वनस्पति वाणी

वर्ष : 5 सितम्बर, 1994 अंक : 5

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

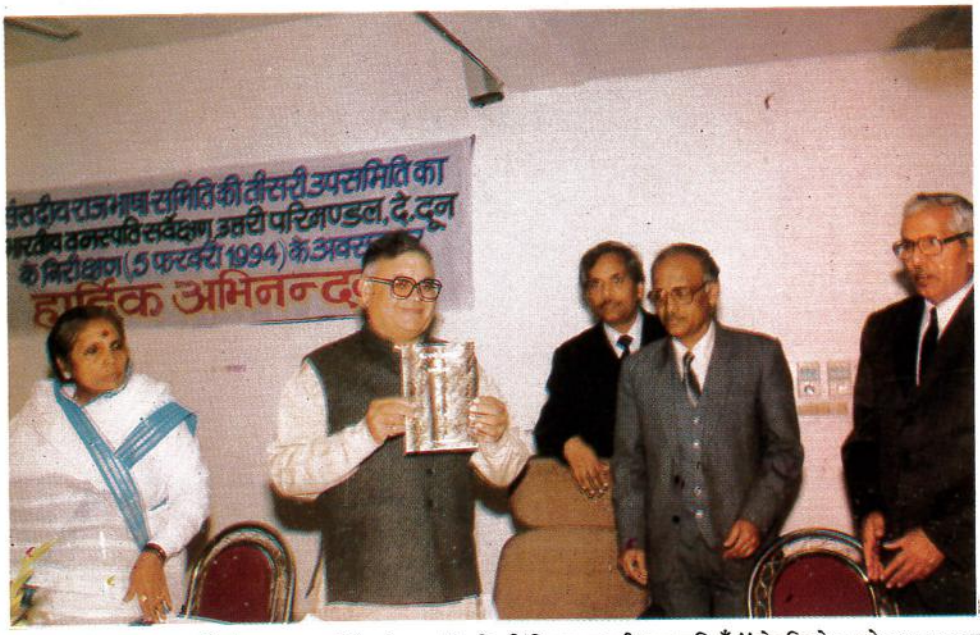

माननीय संसद सदस्यश्री शंकर दयाल सिंहजी द्वारा ''पश्चिमी हिमालय की वनस्पतियाँ'' के विमोचन के अवसर पर (बाएँ से दाएँ) श्रीमती एस के क्षीरसागर, सांसद, श्री एस डी सिंह, सांसद (संसदीय राजभाषा समिति के संयोजक), डा. डी. के सिंह, उप निदेशक, उ प, डा. पी के हाजरा, निदेशक, श्री नाहर सिंह वर्मा, सदस्य-सचिव

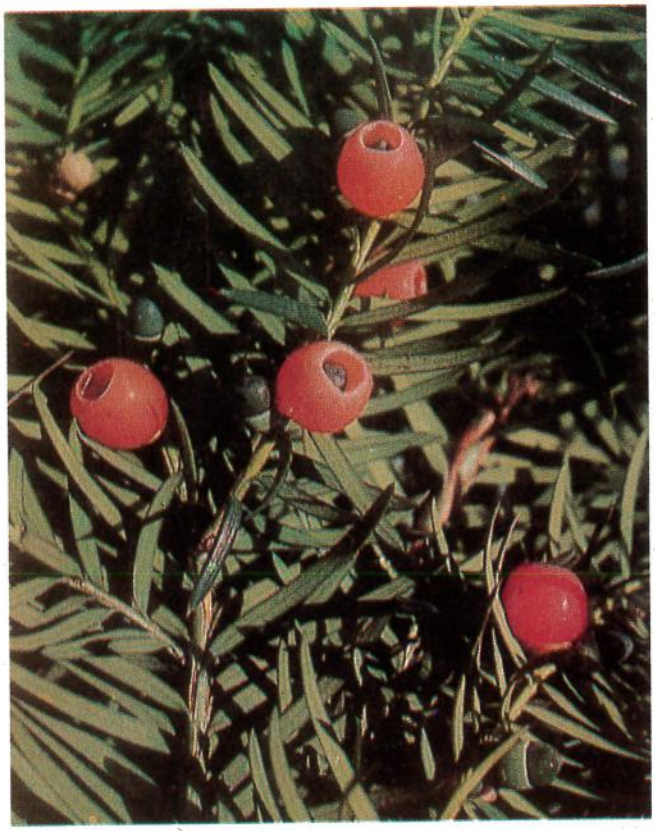

टैक्सस बकाटा (धेंगरेसल्ला-नेपाली)

वनस्पति वाणी

वर्ष : 5 सितम्बर, 1994 अंक : 5

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

मुखपृष्ठ का चित्र : पेफियोपेडिलम — स्पाइसेरिएनम एक संकटग्रस्त लेडीज स्लीपर आर्किड

सम्पादक मण्डल

डा. पी. के. हाजरा : *प्रधान सम्पादक*

डा. डी. एम. वर्मा : *सदस्य*

डा. आर. के. चक्रवर्ती : *सदस्य*

डा. वि. मुद्गल : *सदस्य*

श्री ए. आर. के. शास्त्री : *सदस्य*

डा. एस. एल. गुप्त : *सदस्य*

सम्पादन सहयोग

नवीन चौधरी

वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रामाणिकता तथा व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी हैं।

विषय-क्रम

वनस्पति सर्वेक्षण–एक कभी न समाप्त होनेवाली प्रक्रिया 1
दिनेश मोहन वर्मा

मृदा एवं जलीय सूक्ष्म जैविक क्रियाओं पर अम्लता का प्रभाव 5
एस. एल. गुप्त एवं विजय कृष्ण

क्लिरोडेन्ड्रम पैनीकुलेटम लिन. - एक जंगली सजावटी पौधा 10
आर. डी. दीक्षित एवं एस. के. श्रीवास्तव

वनस्पति जगत के कुछ आश्चर्यजनक सत्य : क्या आप जानते हैं? 12
हर्ष चौधुरी

अण्दमान निकोबार द्वीप समूह की वानस्पतिक विविधतायें और उनका संरक्षण 14
पी. एस.एन. राव, विपिन कुमार सिन्हा एवं पी. के. हाजरा

ज्योतीश चन्द्र सेनगुप्त : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के अध्यक्ष का परिचय 19
रथीनकुमार चक्रवर्ती

केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा 24
आर. डी. दीक्षित एवं नवीन चौधरी

अण्दमान निकोबार द्वीप समूह के औषधीय पौधों की विविधताएं 27
पी. एम. पाध्ये, बिपिन कुमार सिन्हा एवं पी. वी. श्रीकुमार

अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस - सतत् विकास और साक्षरता 30
एस. एल. गुप्त

मानव एवं उपयोगी वनस्पतियाँ 32
एस. के. श्रीवास्तव

कैंसर के निदान में उपयोगी पौधे 35
आर सी श्रीवास्तव

अण्दमान निकोबार द्वीप समूह में पर्यावरण एवं पर्यटन 37
बी. के. सिन्हा, रविकुमार विश्नोई एवं पी. एम. पाध्ये

कौन कब कहाँ कितने – वनस्पति जगत में 40
दया शंकर पाण्डेय

मधुमक्खी 42
संजीव कुमार

प्रदूषण ग्रसित दून घाटी 44
श्री कृष्ण मूर्ति एवं रेशमा माथुर

रोग प्रतिरोधी - विटामिन ''सी'' 46
प्रदीप कुमार गुलाटी एवं पी. सी. विश्वकर्मा

पौल्यूशन 49
भगवती प्रसाद उनियाल
पौधे - विटामिनों के स्रोत 50
श्रीमती ऊषा चौधरी एवं श्रीमती रेशमा माथुर
विरासत 53
राज कटारिया 'अज़ीज'
उम्मीद का चिराग 54
राज कटारिया ''अज़ीज़''
माननीय पर्यावरण और वन मंत्री श्री कमलनाथ जी का भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा परिदर्शन 55
समाचार 57
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के कुछ महत्वपूर्ण नये प्रकाशन 58

यदायुष्यं चिरं देवाः सप्तकल्पान्तजीविषु
ददुस्तेनायुषा युक्ता जीवेम शरदः शतम्
दीर्घा नागा नगानद्योनन्ताः सप्तार्णवा दिशः
अनन्तेनायुषा तेन जीवेम शरदः शतम्
सत्यानि पञ्चभूतानि विनाशरहितानिच
अविनाश्यायुषा तद्वजीवेम शरदः शतम्

वनस्पति सर्वेक्षण-एक कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया

दिनेश मोहन वर्मा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता

क्या आपने कभी सोचा है कि आज पृथ्वी पर जो भी जीवन है वह सब पौधों पर आश्रित है। यह केवल पौधे ही हैं जो सूर्य की उर्जा का उपयोग करके हमको खाद्य-पदार्थ देते हैं और जिसको खा कर हम और अन्य सभी प्राणी जीवित हैं। यह मत सोचिये कि यदि पौधे न हो तब हम मछली, चिड़िया या अन्य जानवर खाकर जिन्दा रह सकते हैं क्योंकि वे भी तो सीधे या अन्य प्रकार से पौधें पर ही आश्रित हैं। बाकी बातें छोड़कर आप यही देखिये कि पिछले चौबीस घंटों में किस किस प्रकार से पौधों का उपयोग किया। खाद्य-पदार्थों के अतिरिक्त कपड़े, दवाइयाँ, मकान, घर में मेज कुर्सी व स्वच्छ वायु तक सभी में पेड़-पौधों का योगदान रहा है। इन सब बातों के अतिरिक्त ये पौधे ही हैं जो धीरे-धीरे वीरान स्थानों पर हरियाली लाते हैं, बड़े बड़े पत्थरों को तोड़कर मिट्टी में बदलते हैं और फिर इसे अपनी जड़ों के बीच में सम्हाल कर रोके रहते हैं। इनके वर्षा में सहयोग तथा वर्षा के जल को संचित करके धीरे-धीरे छोड़ने के विषय में अधिकतर लोगों को मालूम ही है। संतुलित पर्यावरण के लिए विविध प्रकार के पेड़ पौधों का होना अति आवश्यक समझा जाता है। एक छोटी सी बात और है, यदि हमको कोई वस्तु कहीं से भी सहज ही मिलती है तो यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि वह सदा ही ऐसे ही मिलती रहेगी। इसके लिए कुछ देखभाल करनी पड़ती है और कुछ चेष्टा व प्रयोग भी करना आवश्यक है। आज जो भी पौधे, अनाज, फल, दवाई या सूत आदि के लिए उगाये जा रहे हैं वह सभी आरंभ में जंगली जाति के ही थे और जंगलों में ही उगते थे। सैकड़ों सालों में इन्हें ढूँढ़ा गया, अलग से उगाया गया, अच्छे अच्छे पौधे छाँटे गये इन पर अनेकों प्रकार के प्रयोग करके सुधारा गया। यह अति आवश्यक कार्य अभी भी चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। विश्व में जंगली पेड़ पौधों का एक ऐसा भंडार है जिसको जितना ही खोजेगें उतनी ही मिलने की आशा की जा सकती है लेकिन इसका यह भी आशय नही है कि हर समय कुछ न कुछ मिलता ही रहेगा। यह तो एक शोध कार्य है, कब और कहाँ क्या मिलेगा पहले से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

अब देखिये कि जिन पेड़ पौधों पर हम इतने आश्रित हैं क्या उनके विषय में हमको अधिक से अधिक जानकारी नहीं एकत्रित करनी चाहिये? पौधों के विषय में किसी प्रकार का शोध कार्य करने के पहले हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम पहले यह जान लें कि हमारे पास कौन-कौन से पौधे कितनी मात्रा में हैं और किस पर्यावरण में होते हैं। यहीं से वनस्पति सर्वेक्षण का काम शुरु होता है।

वनस्पति सर्वेक्षण के लिए हम एक स्थान पर जाते हैं, हर प्रकार के सभी छोटे-बड़े पेड़ पौधों के नमूने एकत्रित करते हैं, उनपर टिप्पणियाँ लिखते है फिर उन्हें वैज्ञानिक तरीके से सुखाकर, वैज्ञानिक और स्थानीय नाम लिख कर पादपालय में एकत्र करते हैं। इन्हीं को आधार मानकर पेड़ पौधों पर शोधलेख और पुस्तकें लिखी जाती हैं। पादपालय में इनको इसलिए एकत्रित करना पड़ता है कि यदि इसे पहचानने में किसी वनस्पतिज्ञ ने गलती की हो तो उसे सुधारा जा सके और यह नमूने आगे के वनस्पतिज्ञों के शोध कार्य के लिए हमेशा उपलब्ध रहें। पादपालय में इन नमूनों से और भी कई प्रकार की जानकारी उपलब्ध होती है जैसे कि एक प्रजाति के पौधे विश्व में कहाँ-कहाँ तक फैले हैं, किन वातावरणों में होते है, उनका स्थानीय लोग क्या क्या उपयोग करते हैं, यह कब फलते-फूलते हैं और ये किन प्रजातियों से अधिक मिलते जुलते हैं।

इस प्रकार के सर्वेक्षण व नमूने एकत्र करने के लिए कुछ निम्नलिखित कारणवश काफी समय लग जाता है : -

(1) पौधे केवल जमीन पर ही नहीं होते हैं। कुछ पौधे दूसरे पेड़ों पर, पानी के उपर तैरते हुए या पानी के अंदर, पत्थरों के पीछे कहीं छुपे हुए या झाड़ियों के बीच में भी होते हैं। इस प्रकार से कभी कभी ऐसा हो जाता है कि जब हम एक तरफ पौधे एकत्र करते हैं तब दूसरी तरफ के पौधे छूट भी जाते हैं।

(2) पेड़ पौधों की सही पहचान के लिए यह आवश्यक है कि उनके फूल या फल या दोनों को साथ ही एकत्र किया जाये। अब अलग-अलग जातियों के पौधों के फलने-फूलने का समय प्रायः अलग-अलग होता है, कुछ पौधे दो-चार दिनों के लिए ही फूलते हैं और कुछ वर्ष में एक ही बार फूलते हैं। इन कारणों से ठीक सर्वेक्षण करने के लिए हमें एक ही स्थान पर अलग अलग मौसम में बार-बार जाना पड़ता है। यह सर्वेक्षण करने वाले वनस्पतिज्ञ के निर्णय पर निर्भर करता है कि किस स्थान पर कितनी बार जाना आवश्यक है।

(3) आजतक के शोधकार्य के आधार पर कहा जाता है कि लगभग दस प्रतिशत पौधों की प्रजातियाँ विलुप्ति की ओर बढ़ रहीं हैं या विलुप्त हो चुकी हैं। इसके कुछ प्रमुख कारण हैं। कुछ पौधों की संख्या तो हमेशा से ही कम रही है क्योंकि उनके उगने के लिए बहुत ही खास प्रकार के वातावरण की आवश्यकता होती है और ये पौधे दूसरे किस्म के पौधों की होड़ मे कमजोर पड़ते हैं। अब यदि उनके वातावरण में कुछ भी कमी आती है तों ये पौधे विलुप्त होने लगते हैं। उदाहरण के तौर पर कुछ पौधे पेड़ों की गहरी छाया में सड़ी-गली पत्तियों के बीच उगते हैं। अब यदि छाया देने वाले पेड़ या सड़ी पत्तियाँ हटा दी जायें तो पौधा नहीं उग सकता। यह भी हो सकता है कि जो कीड़े या तितलियाँ इन पौधों के परागण में काम आते हैं वह आना बंद कर दें, किसी भी कारण से, तब इन पौधों में बीज ही नहीं बनेंगे।

विलुप्त होते पौधों के विषय में पता लगाने के लिए पहले हम पादपालय, पुस्तकें और वैज्ञानिक लेख आदि देखते हैं और उनसे यह पता लगाते है कि कौन कौन सी पौधों की प्रजातियाँ सर्वेक्षण करने के बाद भी पिछले सौ-पचास वर्षों में नहीं एकत्र हो पाई हैं या यदि एकत्र हुई भी हैं तो केवल किसी खास स्थान से ही। अब प्रश्न ये है कि ऐसा क्यों हुआ। हो सकता है कि जिस वनस्पतिज्ञ ने अपने लेख में उस खास प्रजाति के पौधे का विवरण दिया था उसने पहचानने में गलती की हो या उसने पौधों की विविधता को ठीक से नहीं देखा, समझा और जरा सा ही फर्क होने के कारण एक नई प्रजाति का विवरण और वैज्ञानिक नाम दे दिया। यह भी हो सकता है कि प्रकृति में एक नई हाईब्रिड के विकास का प्रयास हुआ हो और उस समय ही उस हाइब्रिड पौधे को एकत्र करके एक नया नाम दिया गया हो। बाद में पर्यावरण अनुकूल न होने के कारण या दूसरी प्रजातियों से कमजोर होने के कारण या किसी और कारणवश वह हाईब्रिड पौधा (प्रजाति) हमेशा के लिए लुप्त हो गया हो और पुस्तकों और लेखों में एक नाम छोड़ गया हो । यह भी देखा गया है कि कुछ प्रजाति के पौधे दवाईयों के बहुत काम आते हैं या उनके फूल इतने आकर्षक होते हैं कि लोग उनको एकत्र करके अपने घरों में सजावट के लिये एकत्र करते हैं। इनको वनों से यह लोग एकत्र ही करते जाते हैं लेकिन इनको खुद बगीचों मे उगाने का कोई प्रयास नहीं करते।

इसका एक ही अन्त होता है। ऐसे पौधे लुप्त हो जाते हैं या कम से कम विलुप्ति के खतरे में तो आ ही जाते हैं। अब यदि हम वनस्पति विविधता को संवार कर रखना चाहते हैं तब हमको अलग-अलग प्रजाति के पौधों के विलुप्ति के खतरे में आने के कारण का पता लगाना होगा। इसका एक ही उपाय है। घर के आराम को छोड़कर बाहर निकलिये, वनों में घूमिये, देखिये-समझिये, वहां के लोगों से घुल-मिल कर बातचीत कीजिये और फिर अपना निष्कर्ष निकालिये। आज के बदलते पर्यावरण में जहाँ दिन-प्रतिदिन वन कट रहे हैं, सड़क, मकान, फैक्ट्री और जलाशय आदि बन रहे हैं, हमको बार-बार सर्वेक्षण के लिए जाना होगा और यह देखना होगा कि इन सब वनोंका वनस्पति विविधता पर क्या प्रभाव हो रहा है।

(4) वनस्पति में बदलाव आने का एक और भी बड़ा महत्वपूर्ण कारण है-विदेशों से नई-नई प्रजातियों के पौधों का आगमन। यह पौधे मनुष्य जानकर उगाने के लिए ला सकता है या अनजाने मे विदेशों से लौटते समय अपने कपड़ों या सामान के साथ ला सकता है। इनके बीज अनाज के साथ भी आ सकते है, चिड़िया, जानवर भी ला सकते हैं, या प्रकृति में फैलते समय हवा, पानी या जमीन से आ सकते हैं। इस प्रकार से आये पौधे लैनटाना, पार्थीनियम, मिकेनिया, आइकौर्निया आदि के विषय में तो हम सभी को मालूम है और ये आज वनस्पतिज्ञों व वन संरक्षणकों के लिए चिन्ता के विषय बन गये हैं। इनको कितना भी उखाड़े या जलायें ये खत्म ही नही होते। जहाँ जहाँ यह आ गए हैं बस दूसरी प्रजाति के पौधे तो उग ही नहीं सकते। इन बाहर से आये हुए पौधों में प्राय: एक खास प्रकृति देखी गई है। ये नये वातावरण में आकर

या तो अपने को जमा नही पाते लेकिन एकबार जम गए तो बुरी तरह से फैलने लगते हैं। इस प्रकार से किसी क्षेत्र की प्राकृतिक वनस्पति और उसकी विविधता को कितनी हानि हो रही है और इसके लिये क्या किया जा सकता है इसकी लगातार खोज-खबर रखनी ही होगी। इसका मतलब है समय-समय पर सर्वेक्षण और वनस्पति अध्ययन।

प्रकृति में वनस्पति विविधता को संवार कर रखने के लिए भारत सरकार ने और बहुत से दूसरे देशों ने भी कानून बनाये है, पौधों के अन्तराष्ट्रीय व्यापार में अंकुश लगाये हैं, विविध प्रकार के स्थानों और वनों को आरक्षित घोषित किया है। पर्यावरण और वनस्पति विविधिता, वन संरक्षण आदि के विषय में अलग अलग तरीको से जन समुदाय को समझाने का प्रयास चल रहा है। इन सबके लिए भी सर्वेक्षण का वैज्ञानिक तरह से प्राप्त आंकड़ों का होना अति आवश्यक है।

यह लिखना थोड़ा कठिन हो रहा है कि आज के समय में जब विज्ञान इतनी तेजी से आगे बढ़ रहा है हम आप पर वनस्पति विज्ञान की सबसे पुरानी पद्धति - सर्वेक्षण और पौधों की पहचान के विषय में जोर डालें। लेकिन क्या करें आज तो हमको पहले से भी अधिक इस काम की आवश्यकता दिखाई पड़ रही है। वनस्पति सर्वेक्षण कहीं पर अधिक और जल्दी जल्दी और कहीं पर कम और देर में हो सकता है परन्तु यह कभी रोका नहीं जा सकता। क्या आप हमारे विचारों से सहमत हैं?

मृदा एवं जलीय सूक्ष्म जैविक क्रियाओं पर अम्लता का प्रभाव

एस. एल. गुप्त एवं विजय कृष्ण
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता

पारिस्थितिकी तंत्र के महत्वपूर्ण जैवघटकों में सूक्ष्म जीवाणुओं का विशेष स्थान है। सूक्ष्म जीवाणु जहाँ एक ओर पारिस्थितिकी तंत्र की समस्त क्रियाओं के लिए आवश्यक है वही दूसरी ओर प्रकृति में कार्बन, नाइट्रोजन, (नत्रजन), फास्फोरस एवं सल्फर, (गंधक) चक्र में महत्वपूर्ण योगदान करते है। स्थलीय एवं जलीय सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या, प्रकार एवं प्रचुरता प्रकृति एवं कार्बन उपलब्धता के अलावा अन्य पर्यावरणीय घटकों पर निर्भर करती है। इन कारकों में एक अम्लता या अम्लीय वर्षा भी है जिसका मतलब उस वर्षा से है जो विश्व के सुदूर शीतोष्ण क्षेत्रों मे होने वाली वर्षा से अधिक अम्लीय होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह वह सम्पूर्ण प्रक्रिया है जिसमें उत्सर्जन, उत्परिवहन, निक्षेपण और वायु प्रदूपक तत्वों (विशेपतया गंधक एवं नाइट्रोजन यौगिकों तथा ओजोन) का प्रभाव "अम्ल निक्षेपण" के रुप में प्रकट होते हैं। सामान्य रुप से सूक्ष्म जैविक क्रियाएं अम्ल निक्षेपण के प्रति काफी संवेदनशील होती है। ये क्रियाएं हाइड्रोजन आयन के सीधे प्रभाव या परोक्ष अथवा अपरोक्ष रुपसे इसको प्रभावित करने वाले कारकों जैसे खतरनाक भारी धातुओं की उपस्थिति के कारण अथवा दोनों कारणों से हो सकती है। अम्ल निक्षेपण के कारण मिट्टी एवं जल की पी. एच में हुए परिवर्तन सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या एवं क्रियाओं को प्रभावित करने के कारण उनके द्वारा की जाने वाली भूजैव रासायनिक क्रियाओं को भी प्रभावित करती है। प्रस्तुत लेख में अम्लता का इन जीवाणुओं पर एवं उनकी क्रियाओं विशेपतया नाइट्रोजन स्थिरीकरण पर प्रभाव का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

(अ) मिट्टी में पाये जाने वाले सूक्ष्म जैविक क्रियाओं पर प्रभाव

थलीय पारिस्थितिकी तंत्र (TERRESTRIAL ECOSYSTEM) में पोपक तत्वों के चक्र (Nutrient cycling) में मृदा सूक्ष्म जीवाणु एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ये कई आवश्यक पोपक तत्वों के कार्बनिक रूपों को अकार्बनिक रुपों में परिवर्तित करने के अलावा उन बड़े एवं छोटे सूक्ष्म मात्रिक धातुओं के विलय में भी सहायक होते है जो केवल पुष्पीय पौधों को ही प्राप्त होते है। मृदा सूक्ष्म जैविक क्रियाओं जैसे कार्बनिक पदार्थो के अपघटन, नाइट्रोजन स्थानान्तरण एवं पोपक तत्वों के आरोहण इत्यादि पर प्रभाव के कारण मिट्टी की उत्पादक क्षमता में कमी आ जाती है और परिणामत: कम उपज के कारण आर्थिक नुकसान होता है। ये अवस्थाए जंगलों की मिट्टी तथा असंचालनीय क्षेत्रों में बहुत ही गंभीर रुप धारण कर लेती है। यहां तक कि कुछ अति संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्र में इस प्रकार से हुए नुकसान को टालना मुश्किल हो जाता है। इसके विपरीत अन्य प्रकार की मृदाओं जैसे कृपि मृदा में स्थायित्व एवं परिस्थितियों के अनुसार टालने में समर्थ होने के कारण अम्लीय वर्षा का कुप्रभाव कम दृष्टिगोचर होता है।

अम्ल निक्षेपण का प्रभाव मृदा के प्रकार एवं उसमें पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं पर निर्भर करता है। विभिन्न प्रकार की मृदा अम्लता के प्रभाव की विभिन्न रूप से समाहित करते हैं जिसके कारण मिट्टी के पी. एच. में परिवर्तन कभी परिलक्षित होता है और कभी नहीं। मृदा सूक्ष्म जीवाणुओं में नील हरित शैवाल, (साइनोबैक्टीरिया), जीवाणु (बैक्टीरिया) एवं कवक (फंजाई) आते हैं। किमोआटोट्रापिक थायोबेसिलाई प्रकार के जीवाणुओं को छोड़कर लगभग सभी जीवाणु कवक की अपेक्षा अम्लीय प्रभाव को सहन करने में कम सक्षम होते हैं। जहां एक और कवक अम्लता के प्रति कम संवेदनशील होते है वहीं इसके विपरीत बैक्टीरिया बहुत ही अधिक संवेदनशील होते हैं। एक अध्ययन के अनुसार मृदा पी. एच. के घटते जाने से जीवाणुओं की संख्या में कमी होना प्रारम्भ हो जाता है और पी. एच. 3. 0 पर मृदा की जैविक क्रियाओं में 90 प्रतिशत की कमी हो जाती है। यह पाया गया कि जब इस अम्लीय मृदा में कार्बनिक पदार्थो का समावेश किया गया तो कई रासायनिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ा है। स्पष्ट है कि अम्लता से जीवाणुओं की संख्या में कमी होने के साथ-साथ उनकी क्रियाओ पर भी प्रभाव होता है। फ्रांसिस (1982) के अनुसार नाइट्रोजन स्थिरीकरण में संलग्न सूक्ष्म जीवाणु जैसे नील हरित शैवाल अम्लता से ज्यादा प्रभावित होते है। इस कारण से ऐसे अम्लता वाले मृदा में फंजाई एवं एक्टीनो माइसिट्स का ज्यादा बाहुल्य रहता है। क्षारीय मृदा में सामान्यत: अधिक पी. एच. होता है। ऐसी मिट्टी से प्राप्त नील हरित शैवाल **नास्टाक कैल्सीकोला** पर अम्लता के प्रभाव का अध्ययन करने से पता चला है कि उनमें नाइट्रोजन स्थिरीकरण पी. एच. पर बहुत निर्भर करती है (राय, 1980)। माइकोराइजा पर अम्लता के प्रभाव का स्पष्ट अध्ययन नहीं हो पाया है, परन्तु कवकों से संरचना के आधार पर समानता होने के कारण यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये भी कम संवेदनशील होगे।

अम्लीय निक्षेपण का दूसरा प्रभाव कार्बनिक पदार्थो के उपघटन एवं आवश्यक पोषक तत्वों के निर्गमन की प्रक्रियाओं पर पड़ता है। जैसा कि वर्णित किया जा चुका है कि अम्लीय अवक्षेपण (Acidic Precipitation) के कारण मृदा अम्लता में वृद्धि केवल कुछ ही जीवाणुओं की वृद्धि में सहायक होते हैं और अधिकांशत: या तो यूं ही पड़े रहते हैं या मर जाते हैं। अम्लीय निक्षेपण का प्रभाव कार्बनिक पदार्थो के प्रकार, मृदा प्रकार, पी. एच., तापमान तथा आर्द्रता इत्यादि पर निर्भर करता है। परन्तु लम्बे समय तक प्रभावी रहे अम्लता का मिट्टी के प्रोटीन एवं जटिल पॉलीसेकराइड के अपघटन जैसे जैविक क्षमता पर भी पड़ता है। बढ़ती अम्लीय सांद्रता के कारण सेलूलोज एवं ह्यूमस अपघटन की प्रक्रिया अत्यन्त धीमी हो जाती है। मोलोनी (1983) के अनुसार पी. एच. 3.8 पर बिचाली अपघटन (Litter Decomposition) पर प्रभाव पड़ने से खनिज पदार्थो के चक्र प्रभावित हो जाते हैं क्योकि बिचाली में पाये जाने वाले जीवाणुओं की प्रक्रिया बाधित हो जाती है। इसके अलावा मृदा श्वसन दर में कमी और अकार्बनिक नाइट्रोजन के एकत्रीकरण में काफी कमी आ जाती है।

प्रकृति में पौधों की वृद्धि के लिए नाइट्रोजन एक महत्वपूर्ण पादप वृद्धि कारक का कार्य करते है। नाइट्रोजन क्लोरोफिल, अमीनो एसिड एवं प्रोटीन इत्यादि के महत्वपूर्ण घटक होने के कारण पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं। ऊंची कुल वाले पौधों (पुष्पी पौधों) में वायुमंडल से नाइट्रोजन

सीधे उपयोग करने की क्षमता न होने के कारण वे नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा तैयार नाइट्रेट एवं अमोनिया का उपयोग करते हैं। नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता जीवाणुओं एवं नील हरित शैवालों में पाई जाती हैं। नील हरित शैवालों में विशेष प्रकार की कोशिका हेटरोसिष्ट (Heterocyst) में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया होती है और कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर हेटरोसिस्ट की कुल संख्या से नाइट्रोजन स्थिरीकरण की मात्रा का अनुपात लगाया जाता है। इस प्रकार से स्थिर नाइट्रेट ग्रहण करने की क्षमता भी पी. एच. पर निर्भर करती है (कश्यप एवं गुप्त, 1982)। चित्र में नाइट्रोजन स्थिरीकरण में होने वाली प्रक्रियाओं जैसे- अमोनीकरण, नाइट्रीकरण, एवं स्थिरीकरण को संक्षेप रुप में दिखाया गया है। यो सभी प्रक्रियाएं हाइड्रोजन आयन के उत्पादन से नियंत्रित होती है। नत्रजनीकरण प्रक्रिया (चित्र 2) दो चरणों में सम्पादित होती है - (1) अमोनिया से नाइट्राइट **नाइट्रोसोमोनास**, जीवाणु की उपस्थिति में तथा (2) नाइट्राइट से नाइट्रेट **नाइट्रोबैक्टर** जीवाणु की उपस्थिति में होते है। ये दोनों क्रियांए मुख्यतया निष्क्रिय/मध्यम पी. एच. पर संपादित होती है और जैसे-जैसे अम्लीय अवस्था बढ़ती है, नत्रजनीकरण की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है और पी. एच. 5.0 या उससे नीचे खत्म प्राय: हो जाती है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं की अम्लता सहन करने की क्षमता विभिन्न होती है। **एजोटोबैक्टर, क्लास्ट्रीडियम** एवं **बेजरिंकिया** जैसे जीवाणुओं तथा **एनाबीना, नास्टाक** एवं **गिलओट्राइकिया** जैसे साइनोबैक्टीरिया पर इस दिशा में काफी शोध हुआ है। सन 1992 में कच्छ वनस्पति पारिस्थितिकी तंत्र, कुआला सिलनगोर (मलयेशिया) में सर्वेक्षण के दौरान जो मृदा नमूने एकत्र किये गये थे उनमे से कुछ का पी. एच 6.0 से भी कम था और उनमें नाइट्रोजन स्थिरीकरण का अभाव होने का एकमात्र कारण इन सूक्ष्म जीवाणुओं का न पाया जाना था (गुप्ता, 1993)। इससे स्पष्ट है कि स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र में पाये जाने वाले नील हरित शैवालों पर अम्लता का काफी अधिक प्रभाव जीवाणुओं की भाँति पड़ता है।

सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Symbiotic Nitrogen Fixation) की अनेक क्रियाओं जैसे (1) लेग्यूम की वृद्धि (2) राइजोबिया का उत्तरजीवी, एवं (3) सहजीवी सम्बन्धों पर अम्लता का प्रभाव पड़ता है। जोडयूलेशन प्रक्रिया कम नाइट्रोजन स्थिरीकरण के कारण प्रभावित होती है। चूकि सूक्ष्म जीवाणुओं की समस्त जैविक प्रक्रियाएं इनमें पाये जाने वाले एंजाइमो पर निर्भर है। अतएव अम्लता के प्रभाव वाले उत्प्रेरकों की प्रक्रिया काफी कम हो जाती है। इन प्रमुख क्रियाओं में सबसे अधिक प्रभावित होने वाली प्रक्रिया सेलूलोज अपघटन है जिस पर कम पी. एच. का प्रभाव देखा गया है।

(ब) जलीय सूक्ष्म जीवाणुओं और प्रक्रियाओं पर प्रभाव

जलीय पारस्थितिकी परितंत्र (Aquatic Ecosystem) में अम्ल निक्षेपणता में क्रमश: वृद्धि जलीय सूक्ष्म जीवाणुओं की जाति विभिन्नता और उनके वितरण को प्रभावित करती है। जैसा कि स्पष्ट हो चुका है कि झरनों एवं नदियों में कार्बनिक पदार्थो के अपघटन में से सूक्ष्म जीवाणु महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। पोषक तत्वों के पुनर्जनन एवं चक्रीय. वितरण में भी ये प्रमुख है। ऊर्जा संरक्षण, पोषक तत्वों के पुर्नचक्र, प्राथमिक उत्पादन में कमी

का कारण इनकी संख्या और फलस्वरुप क्रियाओं में होने वाली कमी है। अम्लता के बढ़ने के साथ-साथ ग्लूकोज एवं ग्लूटामिक एसिड जैसी क्रियाएं भी बाधित होती है।

शैवालों के तन्तुओं का भारी मात्रा में नदियों एवं झीलों की तलहटी में पाया जाना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि पानी में अम्ल की सांद्रता में काफी वृद्धि हुई है क्योंकि बढ़ती अम्लता के कारण उपापचय क्रियाओं में बाधा के फलस्वरुप इन शैवालों की मृत्यु हो जाती है और तलहटी में जमा होने की प्रक्रिया धीरे-धीरे प्रारम्भ हो जाती है। स्पष्ट है कि जलीय पारिस्थितिकी परितंत्र की क्रियाओं में कमी के कारण इससे सम्बद्ध सभी क्रियाएं या तो रूक जाती है या उनमें कमी आ जाती है।

अम्ल का धीरे-धीरे बढ़ना मिट्टी में पाये जाने वाली सूक्ष्म जीवाणुओं पर धीरे-धीरे प्रभाव छोड़ती है और अम्ल प्रतिरोधक (Acid-Resistant) अथवा अम्ल सहिष्णु (Acid-tolerant) जातियों का चुनाव करती है परन्तु लम्बे समय तक कायम रहने वाले अम्लता का प्रभाव कई प्रमुख क्रियाओं जैसे कार्बनिक पदार्थोंके अपघटन एवं नत्रजन स्थिरीकरण पर प्रभाव छोड़ता है। कुछ क्रियाओं में अम्लता के कारण हुई वृद्धि अस्थाई सिद्ध हुए हैं।

प्रकृति में पारिस्थितिकी परितंत्र की जटिल संरचना के कारण कोई सामान्य परिणाम पर प्रकाश डालना सम्भव नहीं लगता है क्योंकि जितने भी परिणाम सामने आये हैं वे मुख्यतया प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों पर निर्भर है। यही कारण है कि ये जटिलताए फील्ड में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की विभिन्न क्रियाओं पर किए गए परिणामों को प्रभावित करती है। इसके अलावा अभी कोई ऐसा अध्ययन सामने नहीं आया है जिससे अम्ल निक्षेपण अथवा पी. एच. के प्रभाव का अध्ययन नदियों एवं झीलों में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं के भूजैव रासायनिक प्रक्रियाओं पर प्रकाश डाल सके। आवश्यकता है इस दिशा में एक मानक विधि द्वारा उच्च स्तर पर इस दिशा में शोध एवं अध्ययन की जिससे इस क्षेत्र की गुत्थियों को सुलझाने में मदद मिल सके।

आभार

यह लेख सूक्ष्म जीव विज्ञान एकक के वर्तमान प्रोजेक्ट का एक भाग है जिसके लिए लेखक निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का आभारी है।

पुनर्अध्ययन

1. ए. जे. फ्रांसिस (1982), वाटर एयर स्वायल पाल्युशन 18 : 375-394.

2. एस. एल. गुप्त (1993), लेखन हेतु तैयार।

3. ए. के. कश्यप, एस. एल. गुप्त एवं जी. जौहर (1982), इंटरनेशनल जर्नल ऑफ प्लाट फिजिओलाजी 106 : 78-86.

4. के. के. मोलोनी, एल. जे. स्ट्रैटन एवं आर. एम. क्लीन (1983) : कनाडियन जर्नल आफ बॉटनी 61 : 3337-3342.

5. आर. राय., एस. एल. गुप्ता एवं ए. के., कश्यप (1980). इण्डियन जर्नल ऑफ माइक्रोबायलाजी 20(3)201-203.

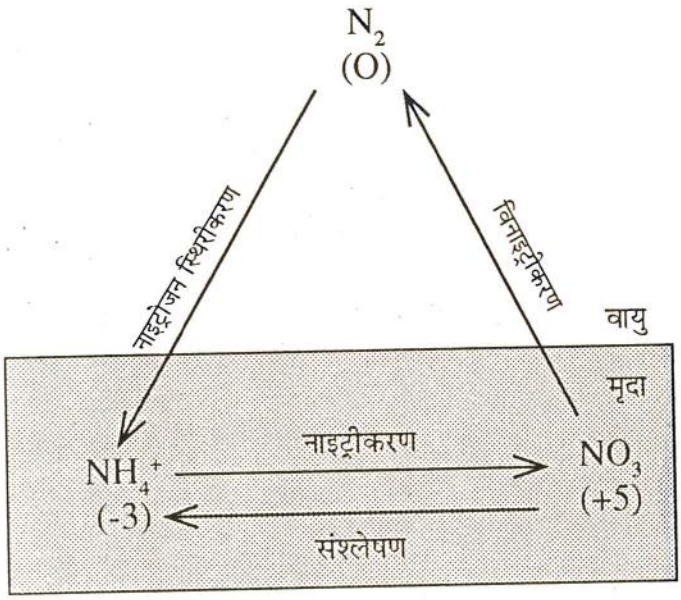

चित्र 1 : नाइट्रोजन स्थिरीकरण

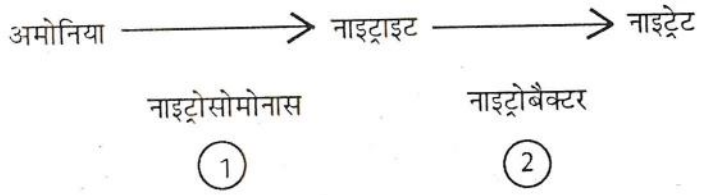

चित्र 2 : नत्रजनीकरण प्रक्रिया

क्लिरोडेन्ड्रम पैनीकुलेटम लिन. - एक जंगली सजावटी पौधा

आर. डी. दीक्षित एवं एस. के. श्रीवास्तव

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

क्लिरोडेन्ड्रम लिन. कुल के पौधे विश्व में उष्णकटिबंधीय भागों में पाये जाते हैं। इस कुल की लगभग 400 प्रजातियाँ सारे विश्व में पायी जाती हैं। क्लिरोडेन्ड्रम की अधिकतर प्रजातियाँ जंगलो में पायी जाती है पर कुछ प्रजातियां बाग, बगीचे में उसके सुन्दर पुष्पों के कारण लगायी जाती है। इस कुल की अठारह प्रजातियाँ भारत में मिलती है जो उत्तरी पूर्वी भारत, दक्षिण पठार, मध्य भारत एवं अण्दमान - निकोबार द्वीप समूह में पायी जाती है। इन पौधों की प्रजातियाँ आम तौर पर नदी के किनारों, रेतीले स्थानों अनुपयोगी भूमि, सड़क के किनारे झाड़ियों के रुप में तथा वनों के बाहरी क्षेत्रों मे मिलती हैं।

अण्दमान-निकोबार द्वीप समूह में **क्लिरोडेन्ड्रम** की लगभग नौ प्रजातियाँ मिलती हैं, जिसमे **क्लिरोडेन्ड्रम पैनीकुलेटम** प्रजाति अपने चटक लाल पुष्पों के कारण निकोबार द्वीप समूहों में विशेष आकर्षण के केन्द्र है और दूर से ही अलग पहचान बनाते हैं।

क्लिरोडेन्ड्रम पैनीकुलेटम लिन. का पौधा निकोबार द्वीप समूहों में सदाबहार वनों के बाहरी क्षेत्रों में अन्य वनस्पतियों के साथ देखा जा सकता है (फोटो - 1) इसकी पत्तियॉ लगभग 18-28× 9-16 सेमी की होती हैं तथा 3-5 भागों में कटी होने से हृदयाकार दिखती हैं। इनके किनारे दंतीले तथा पत्ती स्वयं में पतली होती हैं। पुष्प 1.5-4 सेमी लम्बा एवं गहरे चटक लाल रंग का होता है, जो तने के ऊपरी छोर से निकलता है। पुष्प की पंखड़ी नली लम्बी होने से तथा गहरे लाल रंग के कारण घने वनों में पौधे दूर से ही अपनी सुन्दरता बिखेरते हुए आकर्षित करते हैं। पुष्प एवं फल सितम्बर से फरवरी तक पाये जाते हैं। यह पौधा भारत में कर्नाटक एवं निकोबार द्वीप समूहों में ही जंगलो में देखने को मिला है। अण्दमान द्वीप समूहों से अभी तक नहीं मिला है। भारत के अतिरिक्त थाइलैण्ड, जावा, पेनांग, बर्मा, मलक्का में भी मिलता है।

भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में वनस्पति सर्वेक्षण के दौरान स्वयं की गयी जानकारी के आधार पर यह निष्कर्ष निकला है कि किलरोडेन्ड्रम की भिन्न-2 प्रजातियों के पौधे को औषधीय एवं अन्य उपयोगों मे लाया जाता है। कुछ प्रजातियों के बीज दस्तावर होते हैं, जड़, छाल एवं बीज त्वचा की बीमारियों में लाभप्रद हैं, जड़ के रस से गठिया दर्द एवं दमा जैसी बीमारियों में लाभ होते देखा गया हैं। यह सभी औषधीय जानकारियाँ देश में अनेक स्थानों पर रह रहे आदिवासियो से तथा घने जंगलों मे रह रहे आदिम जन-जातियों से एकत्र की गयी हैं जिनका जीवन यापन वन तथा

वनों से मिलने वाली प्राकृतिक सम्पदा पर निर्भर है, हालांकि **क्लिरोडेन्ड्रम पैनीकुलेटम** लिन. प्रजाति के उपयोग के बारे में अभी तक कोई विशेष जानकारी नहीं उपलब्ध हो सकी है।

वर्तमान में भारत में ये पौधे केवल कर्नाटक एवं निकोबार के द्वीप समूहों में ही प्राप्त है। आज के बढ़ते हुये औद्योगीकरण, जनसंख्या एवं विभिन्न परियोजनाओं आदि के कारण हमारी वनस्पतियाँ संकटग्रस्त हो रही हैं। इस प्रजाति को भी सीमित क्षेत्रों में पाए जाने के कारण संरक्षण की आवश्यकता है, अत: इस सुन्दर, पुष्पीय झाड़ी को विभिन्न उद्यानों में स्थान देकर सौंदर्यीकरण के साथ-साथ प्रजाति को भी संरक्षित कर सकते हैं।

वनस्पति जगत के कुछ आश्चर्यजनक सत्य: क्या आप जानते हैं?

हर्ष चौधरी,
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर (अ. प्र.)

-कि सबसे ज्यादा गहराई तक जाने वाली जड़ें दक्षिणी अफ्रीका में एक जंगली पेड़ की मापी गई है जो 120 मीटर लम्बी थी। **सीकेल सीरेल** (Secale cereale) नामक पौधा 0.051 घनमी धरती में 622.8 मी. लम्बी जड़ें बना लेता है।

-कि **वुल्फिआ अंगस्टा (Wolffia angusta)** या ''डकवीड'' विश्व का सबसे छोटा पौधा है जो लगभग 0.6 मिमी लम्बा और 0.33 मिमी चौड़ा तथा इसका वजन लगभग 0.00015 ग्राम होता है।

-कि लिलियेसी कुल का **हेस्पेरोयुक्का व्हिपलियाई (Hesperoyucca whipplei)** सबसे तीव्रगति से बढ़ने वाला पौधा है। ट्रेस्को ऐबे, आइल ऑफ सिली (Tresco Abbey, Isles of Scilly) में जुलाई, 1987 में इसको 14 दिनों में 3.65 मीटर बढ़ते पाया गया।

-कि 1842 में कारपिंटेरिया, कैलीफोर्निया, संयुक्त राज्य अमेरिका में लगाई गई अंगूर की बेल ने 1900 के कुछ सालों तक 9 टन प्रति वर्ष से भी ज्यादा फल दिए और इसके फलों का औसत उत्पादन 7 टन प्रतिवर्ष था।

- कि विश्व का सबसे विशाल पुष्प **रेफलीशिया आर्नोल्डिआई (Rafflesia arnoldii)** नामक परोपजीवी पौधे का होता है जो दक्षिण पूर्व एशिया के जंगलों में पाया जाता है। इसके पुष्प का व्यास लगभग 91 से. मी. तथा भार 7 कि. ग्रा. तक होता है। ये पुष्प तीव्र दुर्गन्ध-युक्त होते है।

-कि सन 1884 में स्काटलैंड से लाकर टॉम्बस्टोन, एरिजोना, संयुक्त राज्य अमेरिका में लगाया गया ''लेडी बैंकस'' नामक गुलाब के पौधे का तना एक मीटर से ज्यादा मोटा हैं तथा 2.74 मीटर ऊँचा है इसे 68 खम्भों तथा कई हजार फीट लम्बे पाईपों द्वारा इतना फैलाया गया है कि इसके नीचे 150 व्यक्ति बैठ सकते हैं।

-कि बाँस की कुछ जातियां ऐसी है जो 24 घंटे में 91 से. मी. तक बढ़ती है।

-कि **राफिया पॉम (Raphia raffia)** तथा अमेजोनियन **बम्बु पाम (Raphia toedigera)** की पत्तियां 19.81 मीटर तक लंबी होती है।

-कि विश्व का सबसे बड़ा बीज ''डबल कोकोनट'' या **''कोको द मेर'' (Lodoicea seychellarum)** का होता है जिसका भार 18 कि. ग्रा. तक पाया गया है।

-कि आर्किड (Orchid) जाति के पौधों के बीज सबसे छोटे होते है। एक आउंस मे इनकी संख्या लगभग 35000000 होती है।

-कि दुर्लभ **पुया रायमोंडी (Puya raimondii)** सन 1870 में बोलीविया में 3960 मीटर की ऊँचाई पर पाया गया विश्व का सबसे देर में फूलने वाला पौधा है। यह 80-150 साल के जीवन के बाद फूल देता है।

- कि कोलोराडो, संयुक्त राज्य अमेरिका मे सन् 1953 में पाया गया पुष्पधारी पौधे (Flowering Plant) का जीवाश्म 65 मिलीयन पुराना है जो कि अब तक का पाये जाने वाला विश्व का सबसे प्राचीन पुष्प है।

- कि सँसार में सबसे भीमकाय जीवित वस्तु सिकोया नेशनल पार्क (Sequoia National Park) कैलीफोर्निया, अमेरिका में लगा हुआ ''जनरल शौरमन'' नामक दैत्याकार सिकोया (**Sequoiadendron giganteum**)वृक्ष है जिसकी उँचाई 83.8 मीटर है तथा कुल अनुमनित वजन लगभग 2500 टन है जबकि इस विशाल वृक्ष के वीज का भार केवल 4.7 मिलीग्राम है।

- कि अपनी शाखाओं तथा पत्तियों द्वारा सवसे ज्यादा क्षेत्र को घेरने वाला वृक्ष भारतीय वनस्पति उद्यान, कलकत्ता में लगा हुआ विशाल बरगद : **फाईकस बेंगालेनसिस (Ficus benghalensis)** है जिसकी परिधि लगभग 412 मीटर है तथा यह 1.2 हैक्टेएयर क्षेत्र पर फैला हुआ है। किन्तु आँध्र प्रदेश के कादिरी तालुक स्थिति गूटीवेयालू गाँव में ५५० वर्ष पुराना ''**थिम्मांमां मारीमानू**'' (**Thimmamma marrimanu**) नामक वरगद का वृक्ष प्राप्त सूचनाओं के अनुसार 2.1 हैक्टेएयर क्षेत्र में फैला हुआ है।

- कि चीन में उगने वाला **गिंको बाईलोबा** (**Ginkgo biloba**) या ''मेडेन-हेयर ट्री'' नामक वृक्ष विश्व की सबसे प्राचीनतम वृक्ष जाति है जो अवतक जीवित है। इसका आगमन लगभग 1,60,000,000 वर्ष पूर्व ''जुरासिक काल'' में हुआ था। इसको ''जीवित जीवाश्म'' (Living Fossil) भी कहते है।

- कि एरीजोना, दक्षिण-पूर्व कैलीफोर्निया (संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोनीरा मेक्सिको में पाया जाने वाला सागूआरो (Cereus giganteus) विश्व की सबसे बड़ी कैक्टस की जाति है जिसकी उँचाई 24 मीटर तक मापी गई है।

- कि मलेशिया मे पाया जाने वाला **ग्रामैटीफाईलम स्पीसियोसम** (Grammatophyllum speciosum) नामक आर्किड सभी आर्किडों में बड़ा है। इसकी ऊंचाई 7.6 मीटर तक मापी गई है।

- कि **फ्रैगमीपीडियम काडेटम** (Phragmipedium caudatium) नामक आर्किड का फूल आर्किड कुल मे सबसे बड़ा होता है और इसकी पँखुड़ी 46 सेन्टी मीटर तक बड़ी होती है। यह अमेरिका के उष्णकटिबँधीय (Tropical) वनों मे पाया जाता है।

- कि फर्न की सभी जातियों मे नारफोक आईलैडं (Norfolk Island) में पाया जानेवाला **एलसोफिला एक्सेल्सा** (Alsophila excelsa) नामक ट्री फर्न सबसे बड़ा है। इसकी उँचाई 18.28 मीटर तक पाई गई है।

- कि विश्व के सबसे छोटे फर्न **हेसिस्टोप्टोरिस प्युमिला** (Hecistopteris pumila) और ऐजोला केरोली- निआना (**Azolla caroliniana**) हैं।

अण्दमान निकोबार द्वीप समूह की वानस्पतिक विविधतायें और उनका संरक्षण

पी. एस.एन. राव, विपिन कुमार सिन्हा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर
एवं
पी. के. हाजरा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता

अण्दमान एवं निकोबार द्वीप समूह के भूमध्य रेखा के निकट स्थित होने के कारण यहां का मौसम आमतौर पर गर्म तथा अधिक नम होता है और औसतन तापमान 22-35 से. रहता है। यहां पर औसत वर्षा 300 - 380 सें. मी. एवं सापेक्ष आर्द्रता 80% तक रहती है। यहां पाये जाने वाले हरित वर्षा वनों की वनस्पतियों में, आवृतबीजी पौधे (लगभग 2000 प्रजातियाँ) एक प्रमुख घटक है, जिनका काफी विस्तृत अध्ययन किया जा रहा है। यहां के वनों में जिम्नोस्पर्म की मात्र तीन प्रजातियाँ (**नीटम स्कैनडेन्स, साइकस रम्फी** और **पोडोकारपस** नेरीफोलिया) ही पायी जाती है। अभी तक अपुष्पीय पौधों में टेरिडोफाइट समूह की 100 प्रजातियों का अध्ययन किया जा चुका है, परन्तु यहां के वनों में पाये जाने वाले ब्रायोफाइट, लाइकेन्स और फफुंदी समूह के प्रजातियों का अध्ययन होना अभी बाकी है। समुद्री शैवाल समूह में मात्र 70 प्रजातियों के बारे में ही थोड़ी बहुत जानकारी मिल पायी है और इनका भी विस्तृत अध्ययन होना शेष है।

द्वीपों में वनस्पति सर्वेक्षण का इतिहास :

द्वीप समूह में वनस्पति सर्वेक्षण का इतिहास काफी रोचक व पुराना है। कर्नल किड जो कलकत्ता वनस्पति उद्यान के अधीक्षक थे, पहली बार सन् 1791 में इन द्वीपों में पौधों को संग्रह करने आए ताकि यहां के पौधों को कलकत्ता के वनस्पति उद्यान में लगाया जा सके। सन् 1839 में रुसी भूवैज्ञानिक हैलफर ने इन द्वीपों मे पायी जाने वाली खनिज संपदा का गहन निरीक्षण किया, साथ ही यहां के बहुत से पौधों के नमूनों को भी एकत्र किया। सन् 1866 के पश्चात कई वनस्पति वैज्ञानिकों तथा वन विभाग के अधिकारियों जैसे एस. कुर्ज, डी. प्रेन, जी. किंग और सी. जे. रोगर्स आदि ने यहां पायी जाने वाली वनस्पतियों का विस्तृत सर्वेक्षण तथा गहन अध्ययन किया, उन्होंने कई ऐसे बहुमूल्य पौधों के नमूने एकत्र किए जो विलक्षण थे जो आज भी सी. एन. एच. कलकत्ता तथा कई यूरोपीय वनस्पति संस्थानों में सुरक्षित हैं। पार्किसंन ने सन् 1923 में पहली बार पुराने एकत्र किए पौधों के नमूनों तथा अपने द्वारा एकत्र पौधों के नमूनों के आधार पर अण्डमान द्वीप समूह का "फारेस्ट

फ्लोरा'' लिखा जो मुख्यत : वृक्षीय पौधों पर ही आधारित है।

यहां पाए जाने वाली वनस्पतियों के विषय में अधिक से अधिक जानकारी के लिए भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग ने सन् 1972 में यहां पर एक क्षेत्रीय कार्यालय खोलकर इन द्वीपों के सर्वेक्षण का कार्य प्रारम्भ किया जिसके अनुसार इन द्वीपों में देशज (इन्डीजीनस) आवृतबीजी पौधों की 1416 जातियां (682 वंश तथा 137 कुल) हैं। जिनमें से 14% (220 जातियां, 3 वंश जैसे स्पाइरेन्थेरा, पूबीस्टाइलस और जैनियां) क्षेत्रीय प्रजातियां हैं और 54% ऐसे पौधे हैं जो हमारे देश के विभिन्न भागों में भी पाये जाते हैं, जबकि शेष 32% प्रजातियाँ ऐसी हैं जो अण्डमान निकोबार द्वीप समूह एवं दक्षिण पूर्वी एशियाई देश जैसे म्योमार, थाइलैंड तथा मलेशिया आदि में पायी जाती हैं। द्वीपों में पाई जाने वाली आवृतबीजी पौधों की 137 कुलों में से संख्या के आधार पर रुबीएसी, युफोर्बिएसी एवं एनोनेसी 3 प्रमुख कुल हैं। यहां पर 350 ऐसी संवृत प्रजातियां हैं जो बाहर से विस्थापितों द्वारा लाई गयी थी और आज पूरे द्वीप समूह में पायी जाती है।

पिछली एक शताब्दी से भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग तथा दूसरे संस्थानों ने इन द्वीपों के दूर दराज के क्षेत्रों का सर्वेक्षण कार्य किया है तथा यहां पाए जाने वाले पौधों के गहन अध्ययन से लगभग 70 नई प्रजातियों के बारे में पहली बार पता चला। अत: यहां के फ्लोरा का विस्तार से अध्ययन और प्रकाशन अब नितान्त आवश्यक हो गया है ताकि यहां पायी जाने वाली महत्वपूर्ण वनस्पतियों का अधिक से अधिक उपयोग एवं संरक्षण किया जा सके।

द्वीप समूह की उष्ण कटिबंधीय वनस्पतियों को वनस्पति विषमताओं के आधार पर मुख्यत: दो भागों में बाँटा गया है :

1. **समुद्रतटीय क्षेत्र की वनस्पतियां :** इसे पुन: दो भागों में बाँटा गया है :

क. कच्छ वनस्पतियां : ये वनस्पतियां समुद्री खाड़ी के निकट और उसके किनारे खारे व मीठे पानी के मिश्रण में मिलती हैं। ये समुद्री किनारों की मृदा को कटने से रोकती हैं। ऐसा अनुमान है कि इन द्वीपों में 15% (2,50,000 एकड़) क्षेत्र ऐसी ही वनस्पतियों से आच्छादित है। इनमें उगने वाली मुख्य प्रजातियां हैं : **राइजोफोरा म्यूक्रोनेटा, ब्रुगुइएस जिम्नोराइजा, सेरिऔप्स टेगल**। इसके अलावा **एवीसिनिया मेरीना, लुम्नीट्जेरा** दो प्रजाति, **एजिसेरस कार्निकुलेटम, एक्सोकेरिया एगेलोचा** एवं **जाइलोकार्पस ग्रेनेटम** प्रमुख हैं।।

ख. लिटोरल वनस्पतियां : ये रेतीले क्षेत्र समुद्र के किनारे ज्वार भाटा से उत्पन्न लहरों की दूरी तक का है जिसे टाइडल जोन भी कहते हैं। इसमें मुख्यत: रेंगने वाली लताऐं जैसे : **आइपोमिया पेसकाप्रे, विग्ना मेरिना** एवं **फाइला नोडिफ्लोरा** आदि वनस्पतियां हैं **साइकस रम्फीआई** के पौधे बहुत ही बहुतायत से यहां के लिटोरल वनों में पाये जाते हैं जिसके नये कोमल पत्तों को आदिवासी अपने भोजन के रुप में उपयोग करते हैं।

2. **अन्त: स्थलीय वनस्पतियां :** इन वनों में सदाबहार, पर्णपाती तथा घास के मैदानी क्षेत्र है :

क. सदाबहार वन : यहां पाये जाने वाले सारे वनों में सदाबहार वन ही सबसे घने तथा हरे भरे हैं जो पहाड़ों को टंके हुए हैं। इनके घने होने का मुख्य कारण यहां की मृदा की उर्वरक क्षमता हैं तथा ये अपने विकास की चरम सीमा को दर्शाते हैं। इन वनों में विशालकाय ऊंचे वृक्ष, लताएं तथा अधिपादपी बड़ी संख्या में पाए जाते हैं।

ख. पर्णपाती वन : इस श्रेणी के वनों में शुष्क मौसम में पत्तियां थोड़े समय के लिए झड़ जाती हैं और ये मुख्यत : पहाड़ियों की ढलानों पर पाए जाते हैं। यहां की मृदा में पानी को रोकने की क्षमता बहुत कम होती हैं। पर्णपाती वन मुख्यत: उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी अण्डमान के कुछ भागों में मिलते हैं। इनमें पाए जाने वाले बड़े वृक्ष प्रजातियों में **टेरोकार्पस दलवर्जियाडिस, टर्मिनेलिया प्रोसेरा** प्रमुख है।

घास के मैदानी क्षेत्र

द्वीपों के वो क्षेत्र जहां पर वनों की अनियमित कटाई निरन्तर हुई है तथा उनमें काफी समय से वनस्पतियों का अभाव रहा है, कुछ अन्तराल के पश्चात वे क्षेत्र घास के मैदानी क्षेत्र के रुप में दिखाई देते है। वनस्पतियों में घास, शाक व झाड़ियाँ प्रमुख है। इनमे घास की प्रमुख जातियों में **हेटरोपोगान कान्टार्टस, क्लोरिस बारबाटा** एवं फर्न में लाइगोडियम तथा झाड़ियों में मेलास्टोमा प्रमुख हैं।

जलीय वनस्पतियां

अंत: स्थलीय क्षेत्रों में जहां कहीं भी छोटे बड़े गड्ढे, तालाब या धान के खेत होते है उनमें थोड़ी बहुत जलीय वनस्पतियां भी पायी जाती है। यहां पाए जाने वाले मुख्य जलीय पौधों में निम्फिया, लेम्ना एवं आइपोमिया प्रमुख हैं।

पर्यावरण और वन संरक्षण की परियोजनाएं

जैव वैज्ञानिक, प्रकृतिप्रेमी तथा अन्य लोगों के लिए पर्यावरण संरक्षण एक मुख्य विषय है। पौधों तथा जन्तुओं के स्वभाव, आवास, स्थान और संख्या के आधार पर उन्हें वर्गीकृत किया गया है जैसे दुर्लभ, विलुप्त प्राय या विलुप्त प्रजातियां आदि। वनों की वर्तमान दशा के लिये आज मनुष्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से स्वयं ही उत्तरदायी है। हमें द्वीपों की जैविक विविधता को संरक्षित रखनें के बारे में बहुत कृछ सोचना होगा। यदि हमने विकास और पर्यटन के लिए वनों के साथ छेड़छाड़ बन्द न की तो एक समय ऐसा आएगा जब बहुत सी महत्वपूर्ण क्षेत्रीय व उपयोगी वनस्पतियों का अस्तित्व ही समाप्त हो चुका होगा।

मूल आनुवांशिक स्त्रोत (Native genetic resources)

द्वीप समूह में अनेक क्षेत्रीय मूल आनुवंशिक स्त्रोत पाये जाते है। जिनमें से कुछ का उपयोग अनुसंधान के पश्चात भविष्य में किया जा सकेगा। ऐसा सम्भव हो सकता है कि यहाँ पाए जाने वाले महत्वपूर्ण वाइल्ड रिलेटिव, लाभदायक फसली पौधों का उपयोग संकरण (Cross Breeding) में किया जा सकता है जिससे अधिक से अधिक पैदावार ली जा सके। इस विषय में एन. बी. पी. जी. आर., नई दिल्ली के वैज्ञानिकों के अनुसंधान के पश्चात ही ये ज्ञात हो सकेगा कि इनकी कितनी उपयोगिता है फिर भी इन वाइल्ड रिलेटिव के बारे

में लोगों को जागरुक करना तथा इसका पूरा विवरण आदि बताकर इसको संरक्षण भी प्रदान करना है वरना ऐसा न हो कि इन पौधों पर अनुसंधान पूर्ण होने से पहले ही ये पौधे विभिन्न गतिविधियों के कारण समाप्त हो जाए।

जैविक विविधता का संरक्षण

द्वीप समूह की क्षेत्रीय वनस्पतियों व जैविक विविधता का संरक्षण अति आवश्यक है। भारत सरकार का पर्यावरण मंत्रालय इस क्षेत्र में तेजी से कार्य भी कर रहा है ताकि यहां की वनस्पतियों को उनकी प्राकृतिक स्थिति में ही संरक्षण प्रदान किया जा सके। इस संदर्भ में अण्डमान सर्किल भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने सन 1991 में द्वीपों में पर्यावरण तथा जैविक विविधता को संरक्षण प्रदान करने संबधी एक रिपोर्ट (Status Report on Conservation of Plant diversity in Andaman & Nicobar Islands), वन एवं पर्यावरण मन्त्रालय, नई दिल्ली को प्रस्तुत की थी।

द्वीपों में वनों को संरक्षण प्रदान करने के कई अन्य महत्वपूर्ण कारण

1. यहां पाए जाने वाले 350 द्वीपों में से केवल 38 द्वीप ऐसे है जिनपर आबादी है। अन्य काफी दूरी पर स्थित हैं जो आम व्यक्ति की पहुंच से बचे हुए है। वनस्पतियों के संरक्षण के लिए ये द्वीप उपयुक्त स्थल हैं क्योंकि यहां के घने वन अपनी जैविक विविधता व क्षेत्रीय पौधों से परिपूर्ण हैं। अत: इन क्षेत्रों को वैसे ही सुरक्षित रखा जाए और आम व्यक्ति को इन द्वीपों पर रहने की अनुमति न दी जाए।

2. प्राकृतिक अवस्था में रहने वाली खूंखार जनजातियों जैसे जारवा, (दक्षिणी अण्डमान), और सेंटीनली, (उत्तरी सेंटीनल द्वीप), ने आम व्यक्ति को अपनी पहुंच तक आने नहीं दिया है जिसके कारण इन क्षेत्रों को संरक्षण भी मिलता है। प्राकृतिक अवस्था में जीवन यापन करने वाली ये दोनो जनजातियां पूर्णत: प्रकृति पर ही निर्भर है, जिसके फलस्वरुप द्वीपों के इन भागों में पर्यावरण पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा है।

3. द्वीप समूह के खाड़ी तथा कच्छ वनस्पतियों वाले क्षेत्रों में मगरमच्छ बहुतायत से पाए जाते है, जिनके डर से मनुष्य ईंधन के लिए इन वनों से लकड़ियां नहीं काट पाता है। अत: ये क्षेत्र अप्रत्यक्ष रुप से मगरमच्छ द्वारा संरक्षित है।

4. द्वीप समूह के वन विभाग तथा वन बगान विकास निगम ने यहां के वनों में क्षेत्रीय आर्थिक पौधों को लगाया है जो एक तरह से इन प्रजातियों के संरक्षण का कार्य कर रहे है। परन्तु भविष्य में ये पर्यावरण में असन्तुलन भी कर सकते है।

यहां के पर्यावरण को संरक्षित करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना उचित होगा।

1. पिछले कुछ समय से द्वीपों में पर्यटन को काफी बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके लिये योजनाएं बनाते समय प्रशासन को यहां की क्षेत्रीय वनस्पतियों के संरक्षण का भी पूरा ध्यान रखना आवश्यक होगा।

2. भारत सरकार के निर्देशानुसार माउन्ट हैरियट दक्षिणी अण्डमान कर्लबर बे, मध्य अण्डमान और सैड्ल पीक, उत्तरी अण्डमान, को शीघ्र अतिशीघ्र राष्ट्रीय पार्क/उद्यान घोषित किया जाए।

3. यहां पाए जाने वाले क्षेत्रीय पौधे जो अन्य दूसरे स्थानों पर जीवित नहीं रह सकते, उन्हें उनके मूल आवास स्थान पर ही संरक्षण प्रदान किया जाए।

4. ऐसे क्षेत्रीय पौधे, जो द्वीपों के विभिन्न भागों में बहुतायत से पाए जाते है तथा हर परिस्थिति में अपने को जीवित रख सकते है उन्हें वनस्पति उद्यानों में लगाया जाए ताकि उनका अलग से भी संरक्षण किया जा सके।

5. विस्थापितों को जनजातियों वाले क्षेत्रों में, जाने से कड़ाई से रोका जाए ताकि वहा के पर्यावरण पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़ सके।

पर्यावरण संरक्षण पर्यटन के संदर्भ में

इधर कुछ समय से प्रशासन द्वारा लिए गये महत्वपूर्ण निर्णयों के परिणामस्वरुप आय के कई अन्य स्रोत भी उत्पन्न हुए है, जिनमें प्रमुख है पर्यटन उद्योग, जिसके कारण जंगलों पर निर्भरता भी कम हुई है। पर्यटन से द्वीपवासियों को आर्थिक लाभ तो है ही, पर इससे पर्यावरण भी प्रभावित होता है। अत: पर्यटन को बढ़ावा देते समय यह निश्चित करना आवश्यक है कि केवल कुछ चुने हुए द्वीपों को ही इस कार्य के लिए चुना जाए। द्वीप समूह अपने सुन्दर समुद्री तटों, प्रदूषण रहित शान्त वातावरण, नीले सागर तथा घने वनों के कारण प्रकृति प्रेमी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

द्वीपों के बहुमुखी विकास के लिए केन्द्र सरकार और प्रशासन जागरुक है। पर्यटन व विकास गतिविधियों को काफी बढ़ावा दिया जा रहा है। साथ ही यहां की जैविक विविधता व पर्यावरण संरक्षण पर भी ध्यान दिया जा रहा है। जैविक विविधता के लिए अण्डमान निकोबार द्वीप समूह की पूरे विश्व में अपनी एक अलग पहचान है। जिसके लिए प्रशासन पर्यटन विकास के साथ साथ द्वीपों की जौविक विविधता व पर्यावरण को संरक्षित करने के लिए विश्व कोष (W. W. F.)से आर्थिक मदद भी प्राप्त कर सकता है। केन्द्र सरकार व क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थान यहां की बहुमूल्य जैविक विविधता को संरक्षण प्रदान करने के लिए अनुसंधान कार्य तथा योजनाएं कार्यान्वित कर रहे है।

यहां के सीमित, संसाधनों का उचित उपयोग किया जाए। पर्यटन उद्योग, उष्णकटिबंधीय वन तथा समुद्री सम्पदा का दोहन इस प्रकार होना चाहिए कि द्वीप वासियों की आर्थिक दशा सुधरे, देश के विदेशी मुद्रा कोष में वृद्धि हो, साथ ही पर्यावरण पर भी कोई विपरीत प्रभाव न पड़े। पर्यटन, प्रकृति पर आधारित होना चाहिए न कि प्रकृति पर्यटन पर। इसके लिए हमें पारिस्थितिकीय पर्यटन (Eco-tourism) पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। तभी हम पर्यावरण की क्षति को रोकने में समर्थ हो सकेंगे। अत: इन द्वीपों में पर्यटन को यहां की प्राकृतिक दशाओं में ही बढ़ावा दिया जाना उचित होगा।

ज्योतीश चन्द्र सेनगुप्त : भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के अध्यक्ष का परिचय

रथीनकुमार चक्रवर्ती

भारतीय वनस्पति उद्यान, भा. व. स. हावड़ा

21 जनवरी 1969 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के एम एससी प्लांट फिजिओलॉजी प्रयोगात्मक परीक्षा साइंस कालेज कैम्पस, बालीगंज में होने ही वाली थी, परीक्षार्थी अपने विशिष्ट परीक्षक डा. जे. सी. सेनगुप्त का इन्तजार कर रहे थे। घंटी बजने से पहले ठीक उसी क्षण डा. सेनगुप्त के देहान्त का समाचार मिला। शिक्षा को समर्पित उनके जीवन का सरस्वती पूजा के एक दिन पहले उसी विद्या मन्दिर की सीढ़ियों पर लुढ़क कर उनका देहान्त हो गया। सदगुणों से विभूषित, भारतीय वनस्पति विज्ञान के अध्यापन व अनुसंधान की विभूति, दक्ष प्रशासक, अद्‌भुत व्यक्तित्व एवं मानवीय गुण सम्पन्न एक जीवन का अन्त हो गया। राष्ट्रीय प्राध्यापक सत्येन्द्रनाथ सेन ने ठीक ही कहा था : वे कर्मयोगी थे और कर्मवीर की तरह मृत्यु वरण किया।

जन्म और आरम्भिक शिक्षा

ज्योतीश चन्द्र सेनगुप्त का जन्म 15 दिसम्बर 1900 को पूर्वी बंगाल (अब बंगलादेश) में ढाका के निकट आउटशाही ग्राम में हुआथा। उनके पिता सतीश चन्द्र सेनगुप्त रेलवे सेवा में थे। उनकी माँ सुरमा सेनगुप्त धार्मिक स्वभाव की प्रबुद्ध महिला थी। उनके उपदेश एवं प्रेरणा ने बालक ज्योतीश को बहुत प्रभावित किया ज्योतीश चन्द्र सेनगुप्त की आरंभिक शिक्षा-दीक्षा ढाका में हुई।

उच्च शिक्षा

1917 में बहुत अच्छी तरह मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास कर उच्च शिक्षा के लिए वे कलकत्ता आए। 1921 में बंगवासी कालेज से बी एससी परीक्षा पास हुए। इसमें वनस्पति विज्ञान उनका एक विषय था। बंगवासी कालेज में आचार्य गिरीश चन्द्र बोस के अध्यापन से वनस्पति विज्ञान में प्रभावित हुए। आचार्य बोस देश में वनस्पति विज्ञान के महान आचार्यो में एक थे। सत्र 1921-23 में उन्होंने कलकत्ता विश्वाविद्यालय में एम एससी (वनस्पति विज्ञान) में दाखिला लिया। बालीगंज सर्कुलर रोड में युनिवर्सिटी कालेज आफ साइंस का परिसर सर तारक नाथ पालित का पुराना उद्यान गृह था। प्रकृति के अध्ययन के लिए आदर्श स्थान और चारों ओर वनस्पति विज्ञान की दृष्टि से दिलचस्प पेड़-पौधे थे। ज्योतीश चन्द्र अपने तीन सहपाठी (सर ललित मोहन धर, आलोक कुमार सेन, रमेन्द्र कृष्ण सरकार)

सहित विश्वविद्यालय के अध्यापकों के घनिष्ठ हो गए। एम एससी में प्रथम श्रेणी के साथ विश्वविद्यालय स्वर्ण पदक एवं पारितोपिक प्राप्त किए। उन्हें प्रो. पी. ब्रूहल, विभागाध्यक्ष एवं वनस्पति विज्ञान के कलकत्ता विश्व विद्यालय अध्यापक के अधीन विश्वविद्यालय शोधछात्रवृति प्रदान किया गया। वे मुख्य रुप से जीवविज्ञान, पराग सेचन, जलकुंभी के बीज के अंकुरण और फलन तथा इंडियन स्लाइम फफूंद से संबंधित शोध करते रहे।

विदेश में शिक्षा

सितम्बर 1926 में प्रो. ब्रूहल की सलाह पर श्री सेनगुप्त हेडेलबर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी के प्लान्ट फिजियोलाजी लेबोरेटरी गए। वहाँ अपने समय के विख्यात प्लान्ट फिजियोलाजिस्ट डा. लुडविग जोस्ट के अधीन उन्होंने रेट्रोपिज्म पर लगभग दो वर्षों तक काम किया। उन्हें 1928 में डी. फिल. नाट उपाधि मिली।

अध्यापन एवं अनुसंधान

जुलाई 1929 में उन्होंने वनस्पति विज्ञान विभाग, के अध्यापक के रुप में प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता में कार्य ग्रहण किया। 1939 में वे विभागाध्यक्ष बन गए। 1950 में वे इस कालेज के प्रधानाचार्य बने। प्रेसीडेंसी कालेज में अपने कार्यकाल में गंगा के मैदान या हिमालय या सुन्दरवन की लवणयुक्त मृदा पर होने वाले विभिन्न पौधों के जल के ऑस्मोटिक पोटेंशियल तथा अवशोपण पर उनका महत्वपूर्ण योगदान हुआ। बाद में वे जूटकेपौधे खासकर उनकी फोटोपिरियडिज्म एवं वर्नलाइजेशन के पुष्पण विधि व पोषण पहलू पर काम करने लगे। सरसों, सोयाबीन, सिसेमम के फोटेपिरियोडिक अनुक्रिया पर उनके शोध से इन फसलों की खेती को कुछ लाभ पहुँचा। फलों और आर्थिक महत्व के कुछ पौधों की डाल के टुकड़ों में कृत्रिम तरीके से जड़ लगाने पर उनके हर्मोनल कन्ट्रोल का अध्ययन किया। अकेले या अपने छात्रों के साथ मिलकर किए गए उनके शोध से 50 से अधिक शोधपत्र बने जो देश-विदेश की पत्रिकाओं में छपे। जब वे प्रेसीडेंसी कालेज के प्रधानाचार्य थे, अपने कालेज परिसर में साइंस कांग्रेस के आयोजन में सक्रिय रुप से भाग लिया।

उनके नेतृत्व में जून 1955 में प्रेसीडेंसी कालेज, कलकत्ता ने शतवार्षिक समारोह का आयोजन किया। समारोह की अध्यक्षता भारत के राष्ट्रपति एवं प्रेसीडेंसी कालेज के पूर्व छात्र डा. राजेन्द्र प्रसाद ने की।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का पुनर्गठन

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुनर्गठन के बाद 1955 में प्रो. सेनगुप्त ने प्रधान वनस्पतिज्ञ एवं विभागाध्यक्ष का पदभार ग्रहण किया।

1955 से 1963 अवधि में डा. सेनगुप्त ने भा. व. स. का गठन एवं विस्तार किया। इस अवधि में चारक्षेत्रीय कार्यालय बने, वरिष्ठ अधिकारियों

की बदली हुई एवं वैज्ञानिक कार्यक्रम तैयार किए गए। डा सेनगुप्त ने अनुभव किया कि टैक्सोनामिक साहित्य एवं क्षेत्रीय वनस्पतिजात के अभाव में सर्वेक्षण कार्य बाधित हो रहा है। उन्होंने वनस्पतिजात पर पुरानी किताबों का पुनर्मुद्रण करवाकर शोधकर्ताओं, अध्यापकों व छात्रों को कम कीमत पर सुलभ कराया। उन्होंने क्षेत्रीय पादपालय, उद्यान, पुस्तकालय, वनस्पति संग्रहालय आदि के विकास पर जोर दिया। उन्होंने भा. व. स. के लिए पुणे, शिलांग, देहरादून एवं कोयम्बटूर में भूमि उपलब्ध किए।

डा. सेनगुप्त ने भा. व. स. में राज्य सरकारों के अधीनस्थ महत्वपूर्ण पादपालय संग्रहों के हस्तांतरण की कार्यवाही आरंभ की। इनमें भारतीय वनस्पति उद्यान, शिवपुर (भा. व. स. के केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा को), कृषि महाविद्यालय, पुणे (भा. व. स. पुणे को), वन पादपालय शिलांग (भा. व. स. शिलांग को), कृषि महाविद्यालय एवं शोध संस्थान, मद्रास सरकार (भा. व. स कोयम्बटूर को) प्रमुख थे।

डा. सेनगुप्त किउ में भारतीय वनस्पति सम्पर्क अधिकारी पद पर पन्द्रह वर्षों के बाद पुनर्स्थापन में सहायक हुए। आरंभ में एक कनिष्ठ वर्ग I पद (सिस्टमेटिक बाटनिस्ट) का सृजन हुआ और आगे चलकर वरिष्ठ वर्ग I (क्षेत्रीय वनस्पतिज्ञ) के रुप में पदोन्नयन हुआ।

डा. सेनगुप्त ने भा. व. स. का अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान, जैसे - विश्वविद्यालय, सी. एस. आई. सी. आर, आइ. सी. ए. आर, राज्य वनस्पति एवं कृषि विभाग, टी बोर्ड, यूनेस्को से सम्पर्क स्थापित किया।

इस तरह डा. जे. सी. सेनगुप्त ने आरम्भ में ही वैज्ञानिक एवं प्रशासनिक दोनो दृष्टि से भा. व. स को सुदृढ़ और सुसंगठित धरातल पर रखा।

माध्यमिक शिक्षा का प्रशासन

1963-67 अवधि में वे पश्चिम बंगाल माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के प्रशासक रहे। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण तथा पश्चिम बंगाल माध्यमिक शिक्षा बोर्ड दोनो में उन्होंने प्रशासनिक दक्षता का प्रमाण दिया। 1967 में सेवा निवृति के बाद उन्हें सी. एस. आइ. आर. का सेवा निवृत वैज्ञानिक सहायता योजना का प्रस्ताव मिला। उन्होंने विश्वविद्यालय वनस्पति विज्ञान विभाग को अपना कार्य स्थल बनाया। यहाँ वे फोटोपिरियडिज्म पर शोध और जीवन के अन्तिम क्षण तक स्नातकोत्तर छात्रों को प्लाण्ट फिजियोलाजी पढ़ाते रहे।

विज्ञान परिषदों का सानिध्य

नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ साइंसेज आफ इंडिया के फेलो, भारतीय विज्ञान कांग्रेस के वनस्पति विज्ञान विभाग (बड़ोदा सत्र, 1955) के अध्यक्ष चुने जाने से उनके विज्ञान साधना को मान्यता मिली। बाटनिकल सोसायटी आफ बंगाल, इंडियन साइंस न्यूज एसोशिएशन, इंडियन सोसायटी ऑफ प्लाण्ट

फिजियोलाजी के कई बार अध्यक्ष, इंडियन सोसायटी ऑफ स्वायल साइंस आदि के सचिव रहे। उन्हें एशिएटिक सोसायटी का पॉल जोहान्स ब्रूहल स्मारक पदक प्रदान किया गया।

डा. सेनगुप्त बिड़ला औद्योगिक एवं तकनीकी संग्रहालय कलकत्ता के गठन में योगदान करते रहे। वे एशिएटिक सोसायटी के गतिविधियों में गहरी रुचि लेते थे। उसके अलावा प्राचीन भारत की वन सम्पदा के अध्ययन में पर्याप्त समय देतेथे।

समितियों की सदस्यता

शैक्षणिक और प्रशासनिक समितियों के लिए प्रो. सेनगुप्त अत्यन्त उपयोगी मानेजाते थे। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय, विश्वभारती विश्वविद्यालय, कल्याणी विश्वविद्यालय, उत्तर बंग विश्वविद्यालय के सिनेट एवं सिंडिकेट के सदस्य, बोस इंस्टीच्यूट, कलकत्ता, नेशनल बाटनिक गार्डेन, लखनऊ, प्रेसीडेंसी कालेज, कलकत्ता तथा अन्य शैक्षणिक और वैज्ञानिक संस्थानों के सदस्य रहे। वे राज्य कृषि अनुसंधान संस्थान, वन्यजीव के राज्य बोर्ड, भारतीय संग्रहालय के न्यासी बोर्ड, बिड़ला औद्योगिक एवं तकनीकी संग्रहालय, कलकत्ता, प्राणी उद्यान, कलकत्ता, टी बोर्ड के चाय अनुसंधान सम्पर्क समिति, सी. एस. आइ. आर. के जैव अनुसंधान समिति, संग्रहालय के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड, भारत सरकार, राज्य कृषि महाविद्यालय प. बंगाल आदि विभिन्न समितियों के सदस्य रहे।

मित्र मण्डली एवं छात्रगण

डा. सेनगुप्त के विशाल मित्रमंडली में कुछ प्रमुख नाम है : डा. सी. बराट, केमिकल इंजीनियर, डा. के. विश्वास, अधीक्षक, भारतीय वनस्पति उद्यान, डा. डी. एम. बोस, निदेशक, बोस इंस्टीच्यूट, डा. जे. एन. मुखर्जी, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, प्रो. एस. एम. सरकार, कलकत्ता विश्वविद्यालय आदि।

डा. सेनगुप्त अपने छात्रों को स्नेहदेते और उनकी देखरेख करते थे। उनके कुछ प्रमुख छात्र हैं - डा. सलिल कुमार चटर्जी, कुमुद चौधरी, प्रवीर गुहठाकुरता, कनक लाल लाहिड़ी, प्रो. संतोषकुमार पाइन, डा. जगदीश चन्द्र साहा, प्रो. नीरद मोहन सेन, प्रो. श्यामापद सेन आदि।

व्यक्तिगत गुण

डा. सेनगुप्त को वनस्पति से बहुत प्रेम था। वे कहते थे कि हमारे आवास के निकट इतने पेड़ पौधें होने चाहिए कि जंगल के समान लगे। कलकत्ता और शान्तिनिकेतन में उनका निवास ऐसा ही था। उन्हें खेलकूद से लगाव था। वे जिन संस्थाओं में रहे वहाँ खेलकूद को प्रोत्साहन दिया।

वे स्वयं निश्छल और ईमानदार थे, दूसरों को भी ऐसा ही मान लेते थे। अपने अधीन काम करने वालों को कोई गलती होने पर वे आरंभ में माफ कर देते थे। माफ करने का सिलसिला

कभी-कभी इस कदर बढ़ जाता कि वे स्वयं असुविधा में पड़ जाते। वैसे देखने में वे कड़े स्वभाव के व्यक्ति लगते थे, पर उनका हृदय प्रेम से भरा था।

डा. एस. के. जैन, पूर्व निदेशक, भा. व. स. कई बार उनके निकट सम्पर्क में आए। डा. सेनगुप्त कार्यालय से सम्बन्धित और निजी समस्याओं को ध्यान से सुनकर सही मशविरा देते थे। उनकी गहरी सहानुभूति सभी को प्रभावित करती थी। अपने सहकर्मियों से वे उनके परिवार के लोगों का भी कुशल पूछा करते थे।

डा. सेनगुप्त की लिखावट बड़ी अच्छी और साफ-सुथरी थी। वे संक्षिप्त किन्तु स्वयंपूर्ण चिट्ठियाँ लिखते थे। सहकर्मियों के पत्रों के जबाव अपनी लिखावट में और अपने खर्च से भेजते थे। भा. व. स. के वरिष्ठ अधिकारियों की उनके निवास पर आयोजित बैठक में भोजन के समय वे स्वयं परोसते थे। जाहिर है कि वे बड़े प्रसन्न चित्तरहते थे।

पुस्तकों, पत्रिकाओं और पुनर्मुद्रणों का उनका निजी संग्रह विशाल था। ए. के. घोष एवं प्रो. ए. के. शर्मा के सक्रिय सहयोग से श्रीमती सेनगुप्त ने 1970 में पूरा पुस्तकालय वनस्पति विज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय को दान कर दिया।

21 जनवरी 1969 को डा. सेनगुप्त का असामयिक देहावसान हुआ। शोक संतप्त परिवार में पत्नी नीलिमा सेनगुप्त, एक मात्र कन्या डा. यशोधरा बागची, दामाद डा. अमिय कुमार बागची रह गए। उनकी सारी गतिविधियों में उन्हें पत्नी की प्रेरणा और सहयोग मिलता रहा।

केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

आर. डी दीक्षित एवं
नवीन चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता

विज्ञान के क्षेत्र में समुचित शोध, अनुसंधान एवं गवेपणा के लिए प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुनर्गठन के क्रम में इस तथ्य का ध्यान रखा गया। तदनुसार केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला की स्थापना 13. 4. 54 को डा. (कुमारी) इ. के. जानकी अम्माल के तत्वावधान में हुई। इसके साथ उन्हें भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुनर्गठन के लिए विशेष कार्य अधिकारी (ओ. एस. डी.) नियुक्त किया गया था। डा. जानकी अम्माल ने प्रयोगशाला में मुख्य रुप से निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्यक्रम निर्धारित किया :-

- भारतीय वनस्पतियों से सम्बन्धित विविध समस्याओं पर शोध करना।

- कृपि, बागवानी, वन विज्ञान, व्यापार, उद्योग एवं औपधि आदि के लिए कार्य करना।

- भारत की वनस्पति सम्पदा के उपयोग के लिए पौधों से सम्बन्धित जानकारी की आपूर्ति करना।

आरंभ में प्रयोगशाला की स्थापना भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में हुई। तत्पश्चात इसका स्थानान्तरण लखनऊ हुआ जहाँ इसे जीवन मिला। फिर इसे इलाहाबाद एवं 1962 में स्थायी रुप से कलकत्ता लाया गया। अब यह भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का एक प्रमुख अंग है। वर्तमान में यह केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय भवन, भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में है।

डा. जानकी अम्माल प्रथम निदेशक थी जिन्होंने प्रयोगशालाओं की स्थापना और विकास में सक्रिय दिलचस्पी दिखाई। इस दिशा में उनका उल्लेखनीय कार्य था-भारतीय वनस्पतिजात के लिए क्रोमोजोम (गुणसूत्र) एटलस तैयार करने का सूत्रपात। उन्होंनें राउवोल्फिया और निम्फिया जैसी जलीय वनस्पतिके कोशीय वर्गीकरण (Cyto taxonomy) अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया। इलाहाबाद में उनके कार्यकाल में डायोस्कोरिया एवं अन्य गांठवाले (tuberous) पौधों का अच्छा संग्रह एवं कार्य हुआ।

डा. जानकी अम्माल की जगह डा. जी. एस. पुरी आए। उन्होंने पारिस्थितिकीय अनुसंधान पर जोर दिया और भारतीय वनस्पति के पारिस्थितिकीय पहलुओं पर उल्लेखनीय योगदान किया।

अब भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के विभागाध्यक्ष का पदनाम मुख्य वनस्पतिज्ञ (चीफ बाटनिस्ट) से बदल कर 'निदेशक' हो गया। केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला के 'निदेशक' का पद अब संयुक्त निदेशक से जाना जाने लगा। डा. के. सुब्रमण्यम

प्रथम संयुक्त निदेशक बने। उनकी रुचि जलीय पौधों के भ्रूण विज्ञान, कोशीय वर्गीकरण व पादप भूगोल में थी। जीनस यूर्टिकुलेरिया के लिए उनका योगदान बहुत महत्वपूर्ण है।

डा. के. सुब्रमण्यम के बाद डा. एस. एन. मित्र, डा. जे. के. माहेश्वरी एवं डा. आर. एस. राव अल्प अवधि के लिए इस पद पर रहे। निदेशक का पद रिक्त होने के कारण उन पर भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ भी रही।

जुलाई 1978 से संयुक्त निदेशक के रुप में डा. ए. एस. राव प्रयोगशाला के कार्यों को यथासाध्य गति प्रदान करने लगे। प्रभारी के रुप में डा. ए के सरकार एवं डा. (कु) रत्ना सेन ने भी उल्लेखनीय कार्य किए। वर्तमान में डा. आर. डी. दीक्षित, संयुक्त निदेशक प्रयोगशाला के कार्यक्रमों को गति प्रदान कर रहे हैं। पिछले 40 वर्षों में केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला के विभिन्न अनुभागों की कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ निम्नलिखित है :

कोशिका विज्ञान अनुभाग

कोशिका विज्ञान अनुभाग भारतीय वनस्पतिजात के गुणसूत्र (Chromosome) सर्वेक्षण और कोशिका द्रव्य रसायन (cyto-chemical) आविष्कारों के प्रायोगिक पहलू पर कार्यरत है।

इस अनुभाग के प्रयास से 1100 गुणसूत्रांक (Chromosome numbers) का निर्धारण हुआ है जिनमे 75 विवरणों का प्रथम अभिलेख है।

पोएसी, साइपरेसी, एरेसी, यूफार्बिएसी, एकेंथेसी, डाइओस्केरेसी आदि आर्थिक एवं औषधीय दृष्टि से महच्वपूर्ण कुलों के पौधों का कोशिकाद्रव्य विश्लेषण के लिए भारत के विभिन्न भागों से संग्रह किया जा रहा है। भारतीय वनस्पति उद्यान से संग्रहित पौधों ने भी कुछ नए गुणसूत्र अभिलेख दर्शाए हैं। वाउचर नमूने साइटोटैक्सानामिक पादपालय में रखे जाते हैं।

प्राप्त गुणसूत्र आंकड़े किसी कुल या जीनस या जाति के स्पेसियेशन या विकास के कारण निर्धारण में अंततः सहायक होगा।

गुणसूत्र विवरण निर्धारण के लिए इस प्रयोगशाला में गुणसूत्र विश्लेषण के लिए एक सरल तकनीक विकसित किया गया है। यह तकनीक एक बीज पत्री एवं द्विबीजपत्री दोनो ही कुलों पर लागू होता है।

नए भारतीय स्रोत **इफिजेनिया स्टेलेटा** से प्राप्त कोल्चिसिन का परीक्षण चल रहा है। नए कोल्चिसिन (0.5, 0.1, 0.01%) के विभिन्न सांद्रता का **एलियम सेपा** पर प्रयोग करने से उच्च मानक पोलिप्लाइडी, विभाजन एवं मेटाफेज अरेस्ट जैसे कोशिकीय प्रभाव प्रस्तुत हुए। 0.01% घोल के अति निम्न सांद्रता पर भी ट्युमर्स प्रभावी हुए है।

करीब 125 वैज्ञानिक पत्र प्रस्तुत किए गए हैं।

आर्थिक वनस्पति

आर्थिक वनस्पति अनुभाग देश की आर्थिक एवं औषधीय पादप सम्पदा की गवेषणा, परीक्षण एवं मूल्यांकन के लिए समर्पित है। पौधों के आर्थिक पहलू की जानकारी का फील्ड अध्ययन एवं भारतीय संग्रहालय, केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय तथा अन्य पादपालयों में उपलब्ध पादपालय पत्र और अभिलेखों से संग्रह का सिलसिला चल रहा है। इन आँकड़ों

का पादप आधारित उद्योग-व्यवसाय में उपयोग के लिए सत्यापन एवं प्रलेखन हो रहा है।

विभिन्न जनजातियों द्वारा पौधों के उपयोग के अध्ययन के आधार पर उनके उपयोग की व्यापक संभावनाएँ खोजने पर जोर दिया जा रहा है। ऐसी नृवनस्पतीय गवेषणा बिहार, उड़ीसा, प. बंगाल, मध्य प्रदेश एवं आंध्र प्रदेश के जनजाति बहुल क्षेत्रों में चल रही है। परिवार नियोजन के लिए **एब्रस प्रिकेटोरियस** एवं **सेमेकुसर्प एनेकार्डियम** के उपयोग, एंटीडेस्मा डिएंड्रम एवं **वैंगुएरिया प्यूबेसेन्स** का खनिज तत्वों और विटामिनों से सम्पन्न सब्जी के रुप में उपयोग तथा **विटेक्स नेगुंडो** का कीटनाशक के तौर पर उपयोग आदि कुछ प्रमुख अवलोकन हैं।

नृवनस्पतीय अनुसंधान के लिए यह अनुभाग देश में प्रमुख केन्द्र बन गया है।

पश्चिम बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के जिलों का सर्वेक्षण किया गया है। सर्वेक्षण का उद्देश्य है ग्रामीण विकास के लिए लघु उद्योग आरम्भ करने के लिए पौधों के बारे में जानकारी संग्रह करना। फिल्ड कार्य पूछताछ एवं संग्रहों के परिणाम स्वरुप आर्थिक और नृवनस्पतीय महत्व के पादप तथा पादप उत्पादों के एक संग्रहालय में निरन्तर नई सामग्री का संग्रह चल रहा है।

आर्थिक वनस्पति, नृवनस्पति एवं घासों के विभिन्न पक्षों पर एक सौ से अधिक वैज्ञानिक पत्र तथा कुछ पुस्तकें प्रकाशित की गई है।

प्लाण्ट फिजियोलजी एवं बायोकेमेस्ट्री

प्लाण्ट फिजियोलाजी एवं जैव रसायन अनुभाग का विकास अनुसंधान के मौलिक एवं प्रायोगिक (उपयोगिता) पहलुओं के लिए किया गया है। **राउवोल्फिया सर्पेंटिना** के बीज का अंकुरण नगण्य होने से इसके संवर्धन में कठिन समस्या आ गई है। भंडारण की अवधि में फेनोलिक व बेंजोइक एसिड के यौगिकों के संग्रहण का गैर जीव योग्यता के लिए प्रमुख कारकों में एक के रुप में सुनिश्चित कर लिया गया है। डालों के मोटे टुकड़ों पर आइ. बी. ए. (IBA) एन. ए. ए. (NAA)तथा सेरेडिक्स के इस्तेमाल से नए पौधे लगाना बहुत आसान कहा जा रहा है। पौधों के अपुष्पन से वेजिटेटिव एवं जड़ों के निकलने में वृद्धि होती है। सी. सी. ए. (C C A) ए. बी. ए. (A B A) और आई. ए. ए. (I A A) का इस्तेमाल अपुष्पन का विकल्प हो सकता है।

सोलेनम खासिएनम के फलों मे सोलेसोडिन का उच्च प्रतिशत होने से स्टेरवायड्स के संश्लेषण के लिए अच्छी संभावित सामग्री हो सकती है। संवर्धनीय अभ्यासों एवं फिजीयोलजिकल प्रयोगों से सेलोसोडिन का उच्च उत्पाद का मानकीकरण हो चुका है। डायोस्कोरिया के विपरीत इन जातियों का व्यवसायिक उपयोग में लाभ सामने आया है।

केथेरेंथस रोजियस हाल में आन्कोलिटिक एल्कलायड के लिए काफी चर्चित हुआ है, इस पर यथेष्ट अनुसंधान हुआ है। जिबरैलिक एसिड (GA 3) परीक्षण द्वारा एक रासायनिक म्युटेंट प्राप्त हुआ है। इसकी विशेषता है - बारीक पत्तियाँ और अपुष्पण प्रवृत्ति। कच्चा माल उत्पादन बढ़ाने के तरीके और सम्पूर्ण एल्कलायड पर कार्य हुए।

विभिन्न जातियों के बीजों के डॉरमेंसी वायबिलिटी एवं अंकुरण प्रवृत्ति पर कार्य चल रहा है। इस अनुभाग से 75 वैज्ञानिक पत्र प्रकाशित किए गए हैं।

अण्दमान निकोबार द्वीप समूह के औषधीय पौधों की विविधताएं

पी. एम. पाध्ये, बिपिन कुमार सिन्हा
एवं पी. वी. श्रीकुमार
अण्डमान एवं निकोबार एकक, पोर्टब्लेयर

भारत के कोरोमंडल तट से करीब 1200 कि.मी. की दूरी पर स्थित छोटे बड़े लगभग 319 द्वीपों से मिलकर बना अण्डमान निकोबार द्वीप समूह जैविक विविधता की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। ये द्वीप समूह बंगाल की खाड़ी में 6°-14° उत्तर तथा 92°-94° पूर्व भौगोलिक सीमाओ के मध्य 8300 कि.मी. क्षेत्रफल में फैले हुए है। इनकी शृंखला उत्तर में अराकान योमा बर्मा से उठती हुई दक्षिण सें सुमात्रा इण्डोनेशिया तक चली जाती है।

अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह 10° उत्तर में 150 कि.मी. चौड़े समुद्री जल मार्ग द्वारा एक दूसरे से अलग है जिसे 10° चैनल के नाम से जाना जाता है। इन द्वीप समूह में आमतौर पर मौसम उष्ण कटिबंध क्षेत्र के अनुरुप अधिक नम और गरम रहता है जिसके कारण यहां पाई जाने वाली वनस्पतियों में विशिष्ट समानताओं और विषमताओं के अनुरुप, वनस्पति विविधता की झलक देखने को मिलती है। ये द्वीप समूह वर्षाकाल के पूर्वाध में दक्षिण पश्चिमी मानसून तथा उत्तरार्ध में उत्तर पूर्वी मानसून द्वारा प्रभावित होते है. जिसके कारण यहां पर सघन वन क्षेत्र (लगभग 85%)पाए जाते है, जो हरित वर्षा वनों से ढके रहते हैं। द्वीपों के भौगोलिक स्थिति एवं प्राकृतिक दशाओं के कारण यहां वनस्पतियों एवं जीवजन्तुओं जैविक ईकाईयों का केवल अस्तित्व ही नहीं बना रहता अपितु ये इनकी विशिष्टता को भी दर्शाता है। ऐसा माना जाता है कि कुल पायी जाने वाली प्रजातियों में से लगभग दो तिहाई प्रजातियां इन्हीं वनों में पायी जाती हैं।

भारतीय चिकित्सा पद्धति में पेड़ पौधों को औषधि के रुप में सदियों से प्रयोग में लाया जा रहा है किन्तु इनके विशिष्ट जैविक एवं रासायनिक गुणों का विश्लेषण और सत्यापन कार्य अभी भी देश की विभिन्न प्रयोगशालाओं में प्राथमिक स्तर पर है। इसका मुख्य कारण प्राकृतिक परिस्थितियों में विशिष्ट औषधीय घटकों की सांद्रता , अपर्याप्त अथवा निम्न स्तर पर होना कहा जा सकता है। आधुनिक युग में जहाँ एक ओर रासायनिक पद्धति द्वारा औषधि निर्माण को बड़े पैमाने पर विकसित किया जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ आयुर्वेदिक औषधियों के महत्व को भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आंका जा रहा है, यही कारण है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन भी इस दिशा में प्रगतिशील देशों को चिकित्सा पद्धति में वनस्पतियों के उपयोग के लिए प्रोत्साहित कर रहा है। हमारे देश में भी राष्ट्रीय स्वास्थय कार्यक्रम के अन्तर्गत इन औषधियों को प्रधानता दी जा रही है।

अण्डमान निकोबार द्वीपसमूह में पायी जाने वाली आदिवासी जनजातियों को उनकी पारम्परिक जीवन प्रणाली और उत्पति के आधार पर दो समूहों में विभाजित किया गया है।

1. अण्डमान द्वीप समूह में रहने वाले, जरावा, सैंटिनेल, ग्रेट अन्डमानी और ओंगी।

2. निकोबार द्वीप समूह में निकोबारी ओर शोम्पेन।

इन द्वीप समूहों में विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधे पाए जाते है जिनके बारे में अभी भी शोधकार्य होना शेष है। इस लेख के माध्यम से यहां पाये जाने वाले विशेष औषधीय पौधों और उनका यहां की आदिम जनजातियों द्वारा किए जाने वाले उपयोग। उपचारों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

1. कृमिनाशक	राउलफिया सुमात्राना, कोस्टस स्पीसियोसस, एवं ग्लाइकोस्मिस आर्बेरिया
2. ऐण्टीडोट (सर्पदंश)	डोनेक्स कैनीफोर्मिस
3. एन्टिफर्टिलिटी (प्रजनन निरोध)	कोस्टस स्पीसियोसस एंव डायोस्कोरिया पैंटाफाइला
4. एन्टिपाइरेटिक	एडीनिया पिनेन्गियना
5. एन्टीसैप्टिक	औफियोराइज़ा निकोबारिका
6. अस्थमा	अकेन्थस इलिसी फोलियस एवं ट्राइकोसैन्थस ब्रैक्टीएटा
7. बोनफ्रैक्चर (हड्डी टूटने पर)	साइकस रम्फी, डिस्किडिया बंगालेन्सिस
8. छाती, शरीर और जोड़ों के दर्द में	एडीनिया पिनेन्गियना एवं एडीनोस्टीमा लवेनिया
9. खांसी	डिस्किडीया मेजर
10. मधुमेह	सायंजीजियम कुमिनी
11. पेचिस य अतिसार	टेबरनेमोन्टाना क्रिस्पा, एन्सिसट्रोक्लेडस टैक्टोरियस, केसियारिया ग्रीवी फोलिया एवं प्रजाति डीग्लैब्रेटा
12. नेत्र संक्रमण	ग्लोब्बा मेरन्टिना
13. बुखार ज्वर	अमोमम फेंजली, एल्सटोनिया मैक्रोफाइला, डोनेक्स केनीफोर्मिस
14. हाथी पांव	एलीफेन्टोपस स्केबर
15. गैस्ट्रिक डिस्आर्डर (अपच /जठर)	अमोमम फेंजली, एल्सटोमिया मैक्रोफाइला राउल्फिया सुमात्राना
16. सिरदर्द	इकजोरा ब्रूनेसैन्स स्कीवोला सिरिसीया
17. कुष्ठरोग	सायनोमेट्रा रैमीफ्लोरा
18. मलेरिया	एन्सिस्ट्रोक्लेडस टैक्टोरियस एवं राउल्फिया सुमात्राना
19. पल्मोनरी (श्वास संबधी)	पिसोनिया अम्बलीफेरा

20. गठिया रोग	सायज़िजीयम समरेन्जेन्स एवं पिसोनिया अम्बलीफेरा
21. दंतशूल	एडीनोस्टीमा लवेनिया एवं जेन्थोज़ाइलम ओवेलीफोलियम
22. बाह्य एवं आंतरिक घाव	सेमीकारपस कुरजी, टेबरनेमोन्टाना क्रिस्पा एवं हरनैण्डिया पैल्टेटा

उपरोक्त तालिका इस बात को दर्शाती है कि अण्डमान निकोबार द्वीपसमूह में विभिन्न रोगों के उपचार के लिए प्रकृति ने असीमित एवं अमूल्य पौधों को बिखेर रखा है जो हमें इस बात के लिए प्रेरित करती है कि इन पौधों पर अधिकाधिक अनुसंधान किया जाए, जिससे इनके जैविक, रासायनिक एवं औषधीय घटकों के महत्व को वैज्ञानिक स्तर पर समझा जा सके और सुनिश्चित विधियों द्वारा इस प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण किया जा सके।

अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस - 8 सितम्बर पर विशेष

सतत् विकास और साक्षरता

एस. एल. गुप्त
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

वह क्या है जो किसी को आइंस्टाइन, सी.बी. रमण या जगदीश चन्द्र बसु बनाता है ? सुनील गावस्कर, ब्रायन लारा या कपिल देव बनाता है ? रवीन्द्र नाथ टैगोर, कालिदास या शेक्सपियर बनाता है ? वह है शिक्षा जो उचित वातावरण में मिलने पर प्रतिभा को विकसित करता है और महान पथ प्रदर्शक बनता है। जीवन में विकास की तीन अवस्थाएं होती है- पहली अवस्था खेल -खिलवाड़ और आमोद है, उसके बाद सुनिश्चितता की अवस्था है जब तकनीक पर खुद तकनीक के लिए ही काम शुरु किया जाता है, जो चुनौती के लिए सीखा जाता है और स्पर्द्धा के लिए अपनाया जाता है और अंत में काम को अपना बना लेने की अवस्था आती है- जब निजी शैली विकसित की जाती है और इन सभी अवस्थाओं के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है चाहे वह साहित्य की हो, विज्ञान की हो या कला की।

शिक्षित मां बाप का अनुभव अथवा ऐसे शिक्षक की तलाश जो भले ही सर्वश्रेष्ठ न हो परन्तु बच्चों के साथ सहज ढंग से निभा सके, जिसका रवैया अपनापन भरा और दोस्ताना हो और जो बच्चो की सराहना करके उन्हें प्रोत्साहित करता रहे, सतत् विकास की दिशा में पहला प्रयास होता है। विकास के अगले क्रम में अगला शिक्षक अपेक्षाकृत अधिक आग्रही हो और शिष्य को किसी विशेष विषय/कौशल पर तब तक लगाये रखे जब तक वह बिल्कुल सध न जाये। विकास के अग्रिम क्रम में आखिरी शिक्षक बच्चे के लिए गुरु और आदर्श दोनों की भूमिका निभाने वाला हो, बच्चों को जीतने पर शाबाशी और हारने पर प्रोत्साहन देने वाला हो। प्रख्यात शैक्षिक शोधकर्ता ब्लुम का विचार है कि हर बच्चे में कोई न कोई प्रतिभा छिपी होती है और माता पिता उसका पोषण करके एवं उचित शिक्षा प्रदान करके उसके पूर्ण विकास में सहायक हो सकते हैं। इसके ज्वलंत उदाहरण हैं- लिएंडर पाएस या विश्वनाथन आनंद।

इसके साथ ही सरकार का भी इस साक्षरता विकास के लिए उचित कर्त्तव्य होता है। सरकार द्वारा गांवों में प्रौढ शिक्षा अभियान, रात्रि स्कूल , पत्राचार द्वारा शिक्षा क़ी सुविधा एवं अधिकांश प्रदेशों में इन्टर तक नि:शुल्क शिक्षा इसी दिशा में प्रयास का कदम है । आपरेशन ब्लैक बोर्ड के साथ-साथ बाल स्वास्थ्य के लिए अनेको कार्यक्रमों का चलाया जाना जैसे - मौखिक पुनर्जलीकरण

चिकित्सा, स्तनपान, टीकाकरण को बढ़ावा देना भी उसी साक्षरता का एक स्वरुप है । वृक्षारोपण, पर्यावरण संन्तुलन शिक्षा का उत्पादकता एवं विकास के साथ सीधा सम्बन्ध है। प्रदेशीय सरकारों में केरल एवं प० बंगाल का योगदान इस दिशा में सराहनीय है। प० बंगाल में साक्षरता की दर में आठवें एवं नवें दशक के बीच 12% की उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इसी कारणवश शिक्षा प्रसार के लिए युनेस्को (पेरिस) द्वारा प. बंगाल को 1991का नोमा पुरस्कार मिला। शत प्रतिशत साक्षरता में केरल को प्रथम एवं प. बंगाल को द्वितीय पुरस्कार मिला है। प. बंगाल में वर्द्धमान प्रथम पूर्ण साक्षर जिला एवं उ. प्र. में आगरा को पूर्ण साक्षर होने का सम्मान प्राप्त हुआ है।

कम विकास और गरीबी निरक्षरता के साथ-साथ चलती है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर युनेस्को ने 1987 में अपील (Appeal) (एशिया - पेसेफिक प्रोग्राम आफ एजुकेशन फार आल) भारत में शुरु किया है। यही प्रोग्राम लेटिन अमेरिका में 1980 में तथा अफ्रीका में 1984 में पहले ही शुरु किया जा चुका है। विश्व की जनसंख्या के प्रतिशत अनुपात में निरक्षरता के प्रतिशत में कमी आई है परन्तु वास्तविक संख्या में जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप वृद्धि हुई है। 1985 में विश्व में 890 मिलियन लोग निरक्षर थे जब कि यह संख्या 1970 में केवल 790 मिलियन ही थी जिसमें महिलाओं का प्रतिशत 63% था। 1985 में वयस्क निरक्षरता में 27.7% की कमी हुई जो 1970 के 32.9% के अनुपात में काफी कम है। परन्तु उसके मुकाबले 1985 में वयस्क जनसंख्या में 3.2 बिलियन की वृद्धि हुई जब कि 1970 में यह अनुपात 2.3 बिलियन ही था। साक्षरता इस जनसंख्या वृद्धि को रोक सकती है। सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय साक्षरता आयोग इस दिशा में प्रयासरत है। एक अनुमान के अनुसार सन् 2001 तक विश्व में सबसे अधिक निरक्षर भारत में होंगे। इस गणना को गलत साबित करने के लिए हमें एकजुट होना होगा जो सभी के अधिक परिश्रम से ही सम्भव है। सतत विकास हेतु सभी को एक अध्यापक की भांति कार्य करना होगा जो विकास के तीनों सोपानो को बाधा रहित पार करा सके । इस अध्यापक रुपी पथ प्रदर्शक में माता-पिता, भाई-बहन सभी शामिल हैं । महर्षि अरविंद के अनुसार अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं, वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच सींच कर महाप्राण शक्तियाँ बनाते हैं। तो आइए वर्तमान को सुन्दर बनाने के साथ-साथ भविष्य के वातावरण को भी स्वच्छ सुंदर बनाये रखने का संकल्प लें और शिक्षा के द्वारा सतत विकास की ओर कदम बढ़ाये।

मानव एवं उपयोगी वनस्पतियाँ

एस. के. श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

मानव की कहानी जंगल से शुरु हुई और विडम्बना न होगी यदि वह जंगल से ही खत्म होगी। कहानी यूं रहेगी जंगल थे मानव आया, जंगल न रहे मानव गया। आदि मानव ने जंगलों को काटने व जलाने का जो क्रम शुरु किया वह आज भी जारी है। अपने रहने के लिए जगह बनाई जंगलों को काटकर, भोजन के लिए आग जलाने से लेकर कपड़े तथा रहने के लिए तक जो भी सामग्री जुटाई वह इन्हीं वनों में पायी जाने वाली वनस्पतियों से किसी न किसी रुप में प्राप्त की।

बीसवीं शताब्दी के अन्त तक भी लाखों परिवारों के घरों में ईधन के लिए वनों की लकड़ी ही एक साधन है। निरन्तर चल रही विकास परियोजनाओं के कार्यान्वयन से वनों का कटाव हो रहा है जैसे नई सड़कों का बनना, यातायात के लिए रेलवे लाइनों के बिछाने में एवं गृह निर्माण आदि में वनों से ही लकड़ी प्राप्त हो रही है। किन्तु आज की वर्तमान परिस्थितियों में हमारे वन एवं वनस्पतियां मानव जीवन में किस प्रकार से उपयोगी हैं तथा इनका क्या महत्व है।

हमारे भारत देश में लगभग 13% भूमि पर वन क्षेत्र है। इन वनों में पायी जाने वाली वनस्पतियों को देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के आधार पर तथा इनमें पायी जाने वाली विविधताओं एवं समानताओं के आधार पर वर्गीकृत किया गया है जिसमें मुख्यत: शीतोष्ण (टेम्पेरेट) जैसे ठण्डे स्थानों पर मिलने वाली वनस्पतियां तथा उष्ण (ट्रोपिकल) - जिसमें गर्म तथा नमीयुक्त क्षेत्रों में पायी जाने वाली वनस्पतियां होती हैं। वनस्पतियां चाहे हिमालय की हों या समुद्री किनारे पर की वह मानव जाति के लिए एक प्राकृतिक सम्पदा है।

यह हमें भोजन, कपड़ा, ईंधन तथा औषधियां तो प्रदान करती ही है इसके अतिरिक्त स्वच्छ वातावरण भी प्रदान करती है। वनस्पतियां जैसे शाक, झाड़ी व वृक्ष चाहे किसी भी रुप की हो, वायुमण्डल में पायी जाने वाली कार्बनडाईआक्साइड जो जीव जन्तुओं द्वारा श्वसन क्रम में छोड़ी जाती है इन गैसों को वे अपने भोजन बनाने की क्रिया में इस्तेमाल करती हैं जिसके फलस्वरुप यह वनस्पतियां वायुमण्डल में आक्सीजन छोड़ती है। इसके अतिरिक्त कल-कारखानों तथा भूमण्डल पर हो रहे विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों से उत्पन्न हो रही विभिन्न हानिकारक गैसों को भी ये वनस्पतियां अवशोपित करती हैं। इस तरह वायुमण्डल को स्वच्छ एवं तापक्रम को नियंत्रित करती है।

आज जहां एक तरफ हम विकास की ओर बढ़ रहे हैं वहीं समय समय पर हमारी प्राकृतिक सम्पदा जिसमें वन तथा वनस्पतियों का ह्रास हो

रहा है। यह सर्वविदित है कि वन तथा वनस्पतियां हमारी पारिस्थितिक एवं पर्यावरण को सन्तुलित रखने में अपना अभिन्न योगदान रखती है।

लगातार वन कटाव से उपयोगी वनस्पतियों में कमी तो हो रही है वहीं सूखा, बाढ़ आदि जैसी समस्याएं भी बढ़ रही हैं विशेष कर नदी के कटाव तथा वृक्ष विहीन भूमि की ऊपरी सतह बह रही है जिसमें पोटेशियम तथा नाइट्रोजन जैसे तत्वों में कमी आ जाने से वहां की उर्वरा शक्ति भी कम हो रही है। आये दिन पहाड़ी रास्तों में भूस्खलन की घटनाएं, जलों के प्राकृतिक स्रोतों का सूखना तथा जानवरों के चारों में कमी आ जाना जैसी समस्याओं का एक मात्र कारण वनस्पतियों तथा वनों का अभाव है। जिन स्थानों पर पहले हरे भरे जंगल एवं वनस्पतियां रही हैं यदि आज वहां वनस्पतियों का अभाव है तो वहां की पारिस्थितिकीय भी पहले की अपेक्षा बदल चुकी है।

औषधि के क्षेत्र में वनस्पतियों का योगदान आदिमानव के समय से लेकर चरक तक तथा आयुर्वेद से लेकर आधुनिक औषधि तक रहा है। हमारे देश में कितने ही अनुसन्धान केन्द्र हैं जहां पर वनस्पति जैसी प्राकृतिक सम्पदा का जैविक विश्लेषण करके विभिन्न यौगिक निकालते रहते हैं जिन पर अलग-अलग बीमारियों के उपचार हेतु औषधियों के फार्मूले तैयार किये जाते हैं।

कुनैन, गुग्गल, ब्राह्मी तथा सर्पगन्ध आदि कुछ मुख्य वनस्पतियां हैं। इनके अतिरिक्त अनुसन्धान संस्थानों में फाइलेरिया, मलेरिया, गर्भनिरोधक एमीबाइसिस तथा कैंसर जैसे रोगों के परियोजनाओं में वनस्पतियों पर आधारित शोध कार्य चल रहा है।

वनस्पतियों के महत्व पर चर्चा करना स्वयं में एक न समाप्त होने वाला अध्याय ही कहा जायगा क्योंकि ऐसा माना गया है कि किसी भी वनस्पति को लिया जाय तो वह किसी न किसी रुप में उपयोगी साबित होगी। उदाहरण के लिये रबड़, गोंद, रंग तथा अगरबत्ती बनाने वाली वनस्पति से लेकर आवश्यक तेल प्रदान करने वाली सभी वनस्पतियां हमारे देश में मिलती हैं जैसे फाइकस, केनेरियम, इन्डिगोफेरा तथा एक्युलेरिया आदि की प्रजातियां हैं। मेन्था की विभिन्न प्रजातियां सिम्बोपोगोन घास, युकेलिप्टस एवं टेक्सस आदि की प्रजातियों के खुशबुदार तेलों से इत्र, विभिन्न साबुन उद्योगों तथा औषधियां बनाने के प्रयोग में लाया जाता है।

इन वनस्पतियों की उपयोगिता एवं महत्व को देखते हुए जहां इनके अस्तित्व को बनाए रखना अति आवश्यक है वहीं इनका संरक्षण भी जरूरी है। समय-समय पर हमारी वनस्पतियों में परिवर्तन हो रहे हैं कुछ पौधों की प्रजातियां विलीन हो रही हैं तथा कुछ नये पौधे उस स्थान पर प्रवेश कर गये है इन सबका मूल कारण है जनसंख्या में वृद्धि, जिसका सीधा दबाव वनों एवं उनमें मिलने वाली वनस्पतियों पर पड़ा है। इसके अतिरिक्त कुछ वनस्पतियां ऐसी भी हैं जो लुप्तप्राय: (Endangered) व संकटग्रस्त (Threatened) है जिनका अस्तित्व किन्हीं कारणों से लुप्त हो रहा है।

वनों में पायी जाने वाली वनस्पति हो या जीव जन्तु, सभी जैविक इकाइयां परस्पर एक दूसरे के सहयोग से भोजन चक्र बनाती है। इसी भोजन चक्र के सन्तुलित रहने से वहां की पारिस्थितिकीय व पर्यावरण का सन्तुलन बना रहता है इसीलिए सभी वनस्पति प्रजातियों का संरक्षण अति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त औषधि, अनाज, फलों की जंगली वनस्पति प्रजातियों का जर्मप्लाज्म संरक्षण बहुत जरुरी है जिसके द्वारा हम कृषि, औषधि एवं दुर्लभ वनस्पतियों के अभिजनन द्वारा उनमें सुधार लाकर उसकी अनुवांशिक विविधता का अध्ययन भी कर सकते हैं। सार में यह कहना उचित होगा कि जीन भण्डार को सुरक्षित रखना होगा।

दिन प्रतिदिन विभिन्न औद्योगीकरण एवं अन्य योजनाएं जिनका कार्यान्वयन करके हम विकास की ओर अग्रसित तो हो रहे है किन्तु साथ ही साथ हमें यह भी निश्चित करना है कि कहीं हम अपनी प्राकृतिक सम्पदा तो नहीं खो रहे हैं। अत: मानव विकास की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए हमें अपने वनों एवं वनस्पतियों को अनियमित कटाव से रोकना है इसके लिए अधिक से अधिक वृक्षारोपण एक बेहतर सुझाव है।

वनस्पतियों का संरक्षण उनके प्राकृतिक वास में किया जाना एक सरल व आसान उपाय है इस प्रकार विभिन्न प्राकृतिक सम्पदा वाले क्षेत्रों को जीव-मण्डल आरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया है। इसके अतिरिक्त किसी भी वनस्पति को उसके मूल स्थान से हटाकर प्रयोगात्मक उद्यान में लगाकर संरक्षित किया जा सकता है यह उस स्थिति में उचित माना गया है जब उस वनस्पति प्रजाति का संरक्षण उसके प्राकृतिक वास में सम्भव न हो तथा निकट भविष्य में संकटग्रस्त होने की सम्भावना हो।

अत: वनस्पतियों की उपयोगिता मानव जीवन में सदैव रही है और उसका महत्व भी किसी न किसी रुप में देखा गया है । इसीलिए वनस्पतियों का संरक्षण भी मानव जाति के लिए उतना ही आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है जितना कि मानव जीवन, क्योंकि तभी हम एक स्वच्छ पर्यावरण की कामना कर सकेंगे।

कैंसर के निदान में उपयोगी पौधे

आर. सी. श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

कैंसर से मानव जाति की रक्षा हेतु विश्वभर के वैज्ञानिक एवं चिकित्सक निरंतर प्रयासरत है। वैज्ञानिकों ने अनेक पौधों पर भी प्रयोग किए है जिनके आशाजनक परिणम प्राप्त हुए हैं। ऐसा माना जाता है कि **टाइलोफोरा केब्रीफ्लोरा** नामक पौधे से एक अल्कलायड टाइलोक्रेबिन प्राप्त होता है, जो कैंसर-अवरोधी है। इसी पौधे की एक अन्य प्रजाति **टाइलोफोरा आस्थमेटिका** (या **टाइलोफोरा इण्डिका**) जो एलर्जी-जनित श्वांस रोगों में उपयोगी सिद्ध हुई है, में भी कैंसर अवरोधी गुण पाए गए हैं। इस पौधे की कैंसर अवरोधी क्षमता का श्रेय इसके दो एलकल्वयडों टाइलोफोरिन एवं टाइलोफोरिडिन के कारण समझी जाती है।

इसी प्रकार एक चीनी मूल का पौधा **कैम्प्टोथीका एक्यूमिनाटा** तथा एक भारतीय मूल का पौधा **मापिया फोएटिडा** भी कैप्टोबोसिन नामक एलकल्वायड के स्त्रोत है जो कैंसार के निदान में उपयोगी पाया गया है। **मापिया फोएटिडा** में मिथाक्सी कैम्टथेसिन तथा मैपिसिन भी पाए जाते है। इनमें से मिथाक्सी कैम्टोथेसिन कैम्प्टोथेसिन की तुलना में अत्यन्त अल्प मात्रा में ही रक्त कैंसर के उपचार में अत्यन्त प्रभावकारी प्रमाणित हुई हैं।

सूर्यमुखी कुल के **वरनोनिया हाइमेनोलेप्सिस** एवं **वरनोनिया गुइनेन्सिस** पौधों से प्राप्त वरनोलिपिन कैंसर युक्त ट्युमर के उपचार में लाभकारी हैं। इसकी दो प्रजातियाँ **वरनोनिया एन्थेलमेन्टिका** एवं **वरनोनिया सिनेरा** जो हमारे देश में बहुतायत से प्राप्त है, भी प्रभावकारी सिद्ध हो सकती है।

यह माना जाता है कि कपास के बीजों से प्राप्त गोसीपाल नामक रसायन भी ट्युमर को रोकने में प्रभावकारी होता है। इसे मानेट मानेटजुमा स्पोसिओसिसिमा नामक पौधे सेभी प्राप्त किया जाता है। **एइलन्थस गलैन्डुलोसा** नामक चीनी पौधे से प्राप्त रुइटेनेन्थेान ग्लाउकोरुबिनोन एवं डिहाइड्रोएइलैथिआन निशान भी ट्यमुर के निदान में उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

ट्रिप्टेरिजिअम विल्डफोर्डी नामक पौधे से प्राप्त ट्रिपडिओलाइड एवं ट्रिप्टोलाइड नामक डाइटरमिन, पी-338 नामक कैंसर के उपचार में प्रभावकारी है। इसी प्रकार दो केन्याई पौधे **मेयटेनस ओवेटम** एवं **मेयटेनस बुसमानी** पौधे से प्राप्त मेयटेनस तथा इससे संबंधित इस्टर रसायन रक्त कैंसर मे उपयोगी पाए गए है। यह एक अत्यन्त प्रभावकारी औषधि सिद्ध हुई है। इथियोपिया में प्राय: **बूसिया एन्टीडिसेन्ड्रिका** से बुसिओसाइडिस 'ए', 'बी', ब्रूसीन डी तथा ई नामक यौगिक प्राप्त होते है जो येरालेख एसाइटिस कार्सिनेमा, वाकर्स 256, कार्सिनोसार्कोमा, तथा पी. 350 लिम्फो साइटिक रक्त कैंसर में अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हुए है।

बोएमेरिया प्लेटीफाइला नामक पौधे में क्रिप्टोलूरीन नामक एल्कलायड पाया जाता है जो मनुष्य की फेफड़े के कैंसर पर विशेष प्रभावकारी है। इससे हरापिस वाइरस पर भी नियंन्त्रण संभव हो जाता है।

पश्चिम हिमालयी क्षेत्र में प्राप्य जिम्नोस्पर्म कुल का वृक्ष **सिफेलोटैक्सस** से प्राप्त हैंरिगटोनिन तथा होमों -हैरिंगटोनिन, पी.-388 एल, 1210 तथा बी-16 मेलेनोमा नामक कैंसर रोगों के उपचार में प्रभावकारी है। ये दोनों एल्कलायड सदाबहार (कैथेरिन्थसरोजिअस) नामक पौधेसे प्राप्त विंब्लास्टिन एवं विंब्लास्टिन एल्कलायडो के ही समान कैंसर के निदान में उपयोगी है ।

यूनिवर्सिटी आफ कनास में हुए एक शोध के अनुसार टैक्सस वकाटा नामक अनावृत्तबीजी वृक्ष की पत्तियों से टैकसाल नामक एक रसायन प्राप्त होता है जो गर्भाशय, स्तन एवं अन्य प्रकार के विकसित अवस्था के कैंसर के निदान में उपयोगी है। यह पौधा हिमालयी प्रदेश में 2340-3400 मीटर उंचाई तक बहुतायत से पाया जाता है। सिक्किम में इसे घेंगरेसल्ला के नाम से जाना जाता है तथा यह लाचंग क्षेत्र में पाया जाता है। आवश्यकता है इस दिशा में और शोध की जिससे इनकी प्रमाणिकता पूर्णरुप से सिद्ध हो सके।

अण्दमान निकोबार द्वीप समूह में पर्यावरण एवं पर्यटन

बी. के. सिन्हा, रविकुमार विश्नोई
एवं पी. एम. पाध्ये
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पोर्ट ब्लेयर

पर्यटन एक बहुआयामी विषय है, जिसका उद्देश्य सिर्फ भ्रमण, मनोरंजन अथवा यात्रा ही नहीं है, बल्कि इसके अनेक पहलू हैं जैसे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय। वर्तमान समय में इसने उद्योग का रुप धारण कर लिया है। यह विदेशी मुद्रा विनिमय, तथा स्थानीय लोगों के लिये रोजगार और संस्कृति के आदान प्रदान का साधन है। आर्थिक लाभ एवं सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ पर्यटन पर्यावरण को भी बहुत अधिक प्रभावित करता है। कहने का तात्पर्य है कि पर्यटन के दोनों ही पहलू अहम हैं।

अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह अपनी प्राकृतिक सुन्दरता लुभावने समुद्र तटों, विशेष वनस्पतियों और जीव जन्तुओं के लिए केवल भारतवर्ष में ही नही, अपितु पूरे विश्व में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। भूमध्य रेखा के समीप उष्ण कटिबंध क्षेत्र में स्थित होने के कारण यहां के जीव जन्तु और वनस्पतियां अपनी जैविक विविधता और क्षेत्रीय प्रजातियों के लिए विश्व प्रसिद्ध है। वैज्ञानिकों का कहना है कि कुल प्रजातियों में, दो तिहाई प्रजातियां इन्हीं उष्ण कटिबंध वनों में पायी जाती है। हमारे देश में इस तरह के वन केवल पश्चिमी घाट, उत्तरपूर्वी क्षेत्रों तथा अण्डमान निकोबार द्वीपसमूह में ही पाये जाते हैं।

अण्डमान निकोबार द्वीपसमूह के वनों में लगभग 2000 सवृत प्रजातियां (एन्जियोस्पर्म) पायी जाती हैं, जिनमें से 220 प्रजातियां क्षेत्रीय हैं और 32% जातियां अण्डमान निकोबार द्वीपसमूह, तथा उत्तरपूर्वी एशियाई देश, म्योमार (बर्मा), थाईलैंड और मलेशिया में पायी जाती हैं। इन द्वीप समूहों में दुर्लभ वनस्पतियों एवं जीव जन्तुओं का अपार खजाना हैं, जिनका संरक्षण करना अति आवश्यक है क्योंकि इनके संरक्षण के द्वारा ही हम द्वीप समूह की पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण को संतुलित रख सकते हैं। पर्यावरण वैज्ञानिकों का कहना है कि यहां के जंगलों को ऐसे ही सुरक्षित रखा जाए और किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ न की जाए अन्यथा इसके दुष्परिणाम हो सकते हैं। अण्डमान निकोबार द्वीप समूह आज भी पर्यावरण की दृष्टि से बहुत अधिक समृद्ध है।

पर्यटन को बढ़ावा देने के लिये यहां के प्रशासन ने विभिन्न योजनाएं बनायी हैं ताकि अधिक से अधिक पर्यटक यहां आएं और स्थानीय लोगों

को अधिक से अधिक रोजगार के अवसर प्राप्त हो सके, साथ ही देश के विदेशी मुद्रा कोष में भी वृद्धि हो। पिछले कुछ वर्षो से यहां पर्यटकों की संख्या बढ़ रही है साथ ही साथ यहां की जनसंख्या में भी वृद्धि हो रही है, जिसके अनुपात में यहां संसाधनों की कमी है। जनसंख्या के बढ़ने से विकास की गति स्वत: ही धीमी पड़ने लगती हैं। यहां पीने के पानी का मुख्य स्रोत वर्षा है, वर्षा मानसून पर निर्भर है और मानसून वनों पर। इसलिए यहां वर्तमान में ही जंगलों की कटाई को नियंत्रित करना अनिवार्य है। पहाड़ भी कट रहे है जिसका असर यहां की वनस्पतियों पर होना स्वाभाविक ही है। वृक्षारोपण केवल कागजी आंकड़ा न बन कर रह जाए इस बात पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। इन द्वीप समूहों में पायी जाने वाली कई दुर्लभ वनस्पतियां आज हमें नहीं मिल पा रही हैं। विकासशील देशों में प्रदूषण एवं पर्यावरण का पारस्पारिक संबंध है। हांलाकि यहां प्रदूषण अभी अपनी न्यूनतम सीमा पर है लेकिन समय रहते इसका समाधान कर लेना ही बुद्धिमानी होगी। संसार के लगभग 8-9% जो वन है वे विषुवत रेखा पर ही है और वैज्ञानिकों का मानना है कि उष्ण कटिबंध वन संसार के वातावरण तथा जलवायु को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण योगदान करते है अत: हमें इसे बचाना अति आवश्यक है।

द्वीप समूह की भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यहां के पर्यावरण को स्वस्थ रखने के लिये बहुत से कारगर कदम सरलता के साथ उठाए जा सकते है:-

1. इसके लिये जरुरी है कि यहां की जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित किया जाए।

2. पिछले कुछ वर्षों से यहां पर वाहनों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हो रही है। अत: वाहनों द्वारा निकाले गए धुंए का नियंत्रण करना अब आवश्यक बन गया है।

3. यहां की मूल वनस्पतियों और वनों की कटाई को नियंत्रित किया जाए।

4. पर्यटन के लिए केवल कुछ चुने हुए द्वीप ही खोले जाएं।

5. राष्ट्रीय पार्को में पर्यटकों को ले जाने से पूर्व उन्हें जानकारी दी जाए। उन्हें तथा स्थानीय लोगों को क्षेत्रीय पेड़-पौधों और जीव जन्तुओं के बारे में अधिक से अधिक जानकारी दी जाए।

6. जनता को प्रचार माध्यमों के द्वारा पर्यावरण के प्रति अधिक जागरुक बनाया जाए।

7. प्राथमिक कक्षाओं से ही बच्चों को पर्यावरण संरक्षण की सही शिक्षा दी जाए।

8. समुद्री प्रदूषण को कम करने की तरफ ध्यान दिया जाए।

9. प्रदूषण नियमों को बनाया जाए और उनका कड़ाई से पालन किया जाए।

विकास अत्यन्त आवश्यक है परन्तु उससे पहले जरुरी है स्वस्थ जीवन। रोजमर्रा की जरुरतों को नज़र-अन्दाज नहीं किया जा सकता। आवश्यकताएं असीमित हैं जिसके कारण पर्यावरण का प्रभावित होना स्वाभाविक है। अगर हम इन द्वीप समूहों की प्राकृतिक सुंदरता और स्वस्थ पर्यावरण को बचाना चाहते है तो हमें यहां हर प्रकार के प्रदूषण पर नियंत्रण करना होगा। अगर हमने इस बात पर अभी से ध्यान नहीं दिया तो भविष्य में द्वीप समूह के दुर्लभ पेड़-पौधों और जीव जन्तुओं के विलुप्त हो जाने का खतरा उत्पन्न हो सकता है और अगर ऐसा हुआ तो वो हमें , हमारे वर्तमान और भविष्य को धीमे जहर की तरह प्रभावित करता रहेगा।

कौन कब कहाँ कितने -वनस्पति जगत में

दया शंकर पाण्डेय
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

- 'भारतीय वनस्पति उद्यान' की स्थापना हावड़ा (कलकत्ता), पश्चिम बंगाल में 6 जुलाई, 1787 ई0 में हुई। यह एशिया में सबसे बड़ा उद्यान है।
- 'भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण' की स्थापना सन् 1890 में हावड़ा स्थित भारतीय वनस्पति उद्यान के अंदर की गई।
- 'भारतीय वनस्पति उद्यान' के प्रथम विदेशी अध्यक्ष डा. विलियम राक्सबर्ग (सन् 1793-1813 ई0) थे।
- 'भारतीय वनस्पति उद्यान' के प्रथम भारतीय अध्यक्ष डा. काली प्रसाद विश्वास (सन् 1937-1955 ई0) थे।
- 'भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण' के प्रथम निर्देशक सर जार्ज किंग (सन् 1890-1897 ई0) थे
- 'भारतीय वनस्पति उद्यान' हावड़ा में 1350 जातियों के 15,000 से भी अधिक पौधे हैं।
- 'भारत के वनस्पति जात में कुल लगभग 4,50,000 पौधे हैं जिनमें 15,000 संवहनी जाति (संवृतबीजी तथा अनावृत बीजी पौधे के पौधे हैं।)
- 'भारतीय वन्य जीव परिषद' की स्थापना सन् 1952 ई० में हुई।
- 'विशाल वट वृक्ष लगभग 240 वर्ष पुराना, भारतीय वनस्पति उद्यान में है।
- विश्व में 400 से भी अधिक 'राष्ट्रीय उद्यान' तथा 'प्राकृतिक आरक्षण क्षेत्र' है जिनका क्षेत्रफल लगभग 7 लाख वर्ग किलोमीटर है।
- विश्व में कुल 161 जीव मंडल आरक्षण क्षेत्र है।
- भारत में लगभग 100 'अभराण्य', 19 राष्ट्रीय उद्यान तथा 14 'जीवमंडल' आरक्षण क्षेत्र है।
- भारत का सर्वाधिक बड़ा पादपालय केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय हावड़ा (कलकत्ता) है जिसमें 20 लाख से भी अधिक शुष्क पौधों के नमूने (हर्बेरियम) संग्रहित हैं।

- भारतीय वनस्पति उद्यान का ऐतिहासिक हस्तान्तरण 1 जनवरी 1963 ई० पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा भारत सरकार को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के सीधे नियंत्रण में विशाल वट वृक्ष के नीचे सम्पन्न किया गया था।
- ऐतिहासिक 'राक्सबर्ग भवन' का निर्माण सन् 1795 ई० में भारतीय वनस्पति उद्यान के अंदर किया गया।
- भारतीय वनस्पति उद्यान में स्थित प्राचीन पुस्तकालय तथा पादपालय का निर्माण सन् 1883 ई० में हुआ।
- भारत की वनस्पति जात में लगभग 40 प्रतिशत पौधे विदेशी मूल के हैं।
- प्रथम राष्ट्रीय वन महोत्सव सन् 1950 ई० में माननीय मंत्री श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, खाद्य एवं कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा मनाया गया था।

■■■■■■■■■■■

इन औषाधियों को नमन नमन
जो स्वास्थ्य सुधा नित कर वितरित
मेटे जन जन का करुण रुदन
वेदों ने जिनके गुण गाये
ऋषियों ने वे गुण समझाये
धारण कर वसुधा धन्य बनी
सुरभित पुलकित ये दिशा गगन।

– ''वनौषधि रत्नाकर'' से साभार

मधुमक्खी

संजीव कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कलकत्ता

मधुमक्खी व शहद का मनुष्य के साथ रिश्ता बहुत पुराना है। चीनी और शर्करा के आविष्कार से पूर्व शहद ही एक मात्र मीठी वस्तु थी। वेद एवं रामायण में शहद का उल्लेख मिलता हैं।

भारतवर्ष में आमतौर पर मधुमक्खियों की तीन जातियां पाई जाती है। वे निम्नलिखित है :-

1) **एपिस मेलिफेरा या मेगाफिस डरसोटा :** - ये वृहदाकार की मधुमक्खियाँ होती है। इन मक्खियों का छत्ता प्राय: $1 \times 1^1/_3$ वर्ग मी. होता है। ये प्राय: वृक्षों की शाखाओं, गुफाओं या मकानों के दीवारों में छत्ते तैयार करते है।

2) **एपिस या माइक्रोफिश फ्लोरी :-** इस प्रकार की जातियों की मधुमक्खी आकार में छोटी होती है। इनका छत्ता भी प्राय: छोटा ($^1/_6 \times {}^1/_6$ वर्ग मी.) होता है। इन छत्तों सें बहुत कम मात्रा में शहद प्राप्त होता है।

3) **एपिस इंडिका :-** इन जातियों की मधुमक्खियाँ यत्र तत्र दिखाई देती है। भारत में ये पर्वतीं व मैदानी इलाकों में पाई जाती है। ये वृक्षों गुफाओं, मकानों के दीवारों में छत्ते तैयार करते हैं। मधुमक्खियाँ शहद बहुत परिश्रम व अनोखे ढंग से तैयार करती है। मजदूर मधुमक्खी घूम घूम कर मकरन्द (Nector) एंव परागकण (Pollengrain) संग्रह करते हैं। मकरन्द एवं परागकण को खाद्य नली व उदर (Crop or Honey stomach) तक ले जाते है। वहाँ ये पदार्थ रासायनिक प्रक्रिया द्वारा डेक्सट्रोज व लेवुलोज में परिवर्तित हो जाता है। मजदूर मधुमक्खी इन पदार्थों को छत्ते के कुछ विशेष कक्षों तक ले जाकर वमन कर देते हैं। वास्तव में यही शहद है। शहद का छत्ता मक्खी के मोम से बनता है। मजदूर मधुमक्खी के उदर के अन्त में चार कक्षों में मोम ग्रन्थि अथवा वैक्स ग्रन्थि (Waxgland) होते है। इन्हीं ग्रन्थियों से एक तरल पदार्थ निकलता है और कक्षो में जमा होते रहते हैं। मजदूर मधुमक्खी इन्हीं मोमों को काटकर शहद के छत्तों में मोम के कमरे तैयार करते हैं। मधुमक्खी का इस मोम से अनेक सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री, जैसे लिपस्टिक, क्रीम इत्यादि तैयार किया जाता है।

शहद में 17% पानी, 78% शर्करा (डेक्सट्रोज व लेवुलोज) व सामान्य मात्रा में खनिज पदार्थ होते है। शहद केवल मधुमक्खी ही तैयार कर सकते

है शहद बनाने का तरीका मालूम होने के बावजूद भी मनुष्य प्राकृतिक शहद तैयार कर पाने में असमर्थ है।

शहद अपने आप में एन्टिसेप्टिक है। यह कभी सड़ता नहीं हैं। प्राचीन समय में शहद चोट लग जाने पर दवाई के रुप में प्रयोग किया जाता था। आयुर्वेदिक चिकित्सा में शहद को विभिन्न रुपों में प्रयोग किया जाता है।

मधुमक्खी पालन की पद्धति

19वीं शताब्दी के मध्यभाग में पश्चिमी देशों द्वारा मधुमक्खी पालन की आधुनिक पद्धति का आविष्कार किया गया। भारत में आधुनिक तरीके से मधुमक्खी पालन सर्वप्रथम 1882 ई0 में बंगाल (अब बंगलादेश) व पंजाब में हुआ। पर यह बहुत लाभकारी सिद्ध नहीं हुआ।

आधुनिक पद्धति में दो प्रकारों से मधुमक्खी का पालन होता है।

1) पहली पद्धति में एक लकड़ी के बक्से में मधुमक्खी का पालन।

2) शहद निष्कासन व मधुमक्खी के छत्ते में मोम निकालने की वैज्ञानिक व्यवस्था व कुछ यंत्रों का व्यवहार।

अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया एंव न्यूजीलैण्ड में मधुमक्खी का पालन वहुत उन्नत दशा में है। भारत में भी इसे व्यवसाय का रूप देकर हम ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुदृढ़ कर सकते हैं। हांलाकि अब पंचवर्षीय योजनाओं में मधुमक्खी पालन (एपिकल्चर) को समुचित महत्व दिया गया है। नई दिल्ली में पूसा स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान इस दिशा में शोधरत है। भारत सरकार ने मधुमक्खी पालन को एक कुटीर उद्योग का रुप देने का प्रयत्न किया है। खादी ग्रामोद्योग ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। फरवरी से अप्रैल माह के दौरान मधुमक्खी सर्वाधिक शहद उत्पादन करती है। इसलिए इस माह को मधुमाह भी कहा जाता है।

मधुमक्खी पालन एक बहुत ही सस्ता व्यवसाय है। इसका व्यवसाय करने वाले को मधुमक्खी के खान पान के लिए कुछ भी खर्च नही करना पड़ता है। लेकिन वर्षा-ऋतु के दौरान इनके बक्से के निकट मीठा पानी रख देना उचित है।

प्रदूषण ग्रसित दून घाटी

श्री कृष्ण मूर्ति एवं रेशमा माथुर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

प्रस्तुत लेख में पश्चिमी हिमालय स्थित देहरादून घाटी, जो कि एक प्रमुख पर्यटन स्थल भी है, के पर्यावरण असंतुलन, प्रदूषण तथा इनका इस क्षेत्र के पेड़ पौधों पर प्रभाव और इससे सबंधित अन्य समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। देहरादून घाटी अतीत में अपने प्राकृतिक सौंदर्य, वानस्पतिक विविधता और संपदा तथा वन्य जीवों की प्रचुरता के लिए बहुत प्रसिद्ध रही है, परंतु इधर कुछ वर्षों में इन सबका काफी तीव्र गति से ह्रास हुआ है।

दून घाटी जो अतीत में प्राकृतिक वनस्पतियों का भंडार रही है, आज बढ़ते हुए प्रदूषण की समस्या से अछूती नहीं है। पिछले कुछ वर्षों में इस क्षेत्र में पायी जाने वाली प्राकृतिक वनस्पतियों में काफी कमी आती प्रतीत हो रही है। इस क्षेत्र की वनस्पतियों पर अतीत में तथा वर्तमान में अनेक ग्रंथ और शोध पत्र प्रकाशित हो चुके है जैसे डथी (1903), कांजीलाल (1928), बाबु (1977), हाजरा (1983) क.स.ग. जैन एवं शास्त्री (1980), पंत (1983) आदि । इन सबके अध्ययन और विश्लेपण से पता चलता है कि दून घाटी में कितने ही पेड़-पौधों की जातियां या लुप्त हो चुकी है या बहुत कम और विरल होती जा रही है। इसका मुख्य कारण है बढ़ता हुआ शहरीकरण, चूने की खानों का अविवेकपूर्ण दोहन, सड़कों का निर्माण तथा पर्यटन।

दून घाटी में स्थित सहस्त्रधारा (ऊँचाई 800 मीटर) अपने प्राकृतिक सौंदर्य वानस्पतिक संपदा, चट्टानों से अनवरत गिरती हजारों जल धाराओं तथा गंधक युक्त जल धारा के लिए अत्यंत प्रसिद्ध रहा है। एक समय था जब गंधक युक्त जल के औषधीय प्रभावों के कारण यहाँ लोग बड़ी संख्या में आते थे और इस जल का सेवन करते थे परन्तु आज यह जलं इतना प्रदूषित हो चुका है कि इसमें गंधक की गंध भी नही के बराबर रह गई है। इस जल के बहाव में भी कमी आई है। चट्टानों से गिरती जल धाराऐं काफी कम हो गई हैं। सहस्त्रधारा क्षेत्र में स्थित हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं में चूना का पत्थर बहुत पाया जाता है। कभी ये पर्वत श्रृंखलाऐं वनों से आच्छादित थीं परन्तु चूना पत्थर की खुदाई तथा इन खानों के अविवेकपूर्ण दोहन से उत्पन्न भूस्खलन की समस्या से ये पर्वत श्रृंखलाऐं लगभग पेड़ पौधों से विहीन हो चुकी हैं।

सहस्त्रधारा **पिटटोस्पोरम इरियोकार्पम, सोफोरा मोलिस** तथा **आइटिया न्युटेन्स** का मूल स्थान माना जाता है। ये पौधे कभी यहाँ काफी संख्या में पाये जाते थे परन्तु चूना पत्थर के खदानों को आविवेकपूर्ण दोहन, ट्रकों के आवागमन तथा इस पर्यटन स्थल के सौंदर्यीकरण के नाम पर हुए निर्माण कार्यों के कारण ये जातियां अब बहुत कम दिखाई पड़ती हैं तथा इन जातियों को अब विरल की श्रेणी में

रखा जाने लगा है (हाजरा 1984)। बाबु (1977) तथा कांजीलाल (1928) के अनुसार **ग्लोरियोसा सुपर्वा** इस क्षेत्र में सुगमता से प्राय: दिखाई पड़ती थी परन्तु इस पौधे के औषधीय गुण के कारण इसका बहुत ही अविवेकपूर्ण तरीके से दोहन हुआ है (बेनेट एवं गौड़, 1983)।

कैटामिक्सिस बैकेरवाइडिस और **एरिमोस्टैकिस सुपर्वा** दून घाटी के बहुत ही सीमित क्षेत्र में बहुत कम संख्या में पाये जाते है। यदि वन क्षेत्रों का अतिक्रमण तथा वनसम्पदा का अवैज्ञानिक दोहन इसी प्रकार होता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब ये जातियां इस क्षेत्र से पूर्णतया समाप्त हो जायेगी। उदाहरण के लिए **जिम्नोस्पोरिया चैम्पियोनी, वाइटिस हेक्सैन्ड्रम, टेट्रास्टिगमा एफिनी, एटाइलोसिया ग्रैन्डीफ्लोरा, कैराग्रेना पालीकेन्था, प्युसीडेनम देहरादूनेन्सिस** इत्यादि (हाजरा1983)।

दून घाटी में विकास के नाम पर प्रकृति के अविवेकपूर्ण दोहन से उत्पन्न समस्याओं पर पिछले कुछ समय से लोगों के अन्दर जागरुकता बढ़ी है। लोगों को स्वच्छ वातावरण, वनीकरण का महत्व, सामाजिक वानिकी तथा संतुलित पर्यावरण का महत्व समझ में आने लगा है। चूना पत्थर की खुदाई का कार्य लगभग बन्द हो चुका है तथा वनीकरण का कार्य उत्साह के साथ किया जा रहा है। आज सबसे अधिक आवश्यकता है पर्यावरण संरक्षण में जनसाधारण की भागीदारी तथा उनके अथक प्रयास और सहयोग की, तभी हम अपने वानस्पतिक संपदा और प्राकृतिक धरोहर को आने वाली पीढ़ी के लिए बचा पायेगें। जीव तथा वन का संबंध और महत्व समझना होगा। ''जीवन'' है ही ''जीव'' और ''वन''।

रोग प्रतिरोधी - विटामिन ''सी''

प्रदीप कुमार गुलाटी एवं पी. सी. विश्वकर्मा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

स्वस्थ शरीर के लिए यदि संतुलित आहार महत्वपूर्ण है तो संतुलित आहार में विटामिनों का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है। विभिन्न प्रकार के विटामिन पोषक तत्व प्रदान कर भोजन को संतुलित व स्वास्थ्य हेतु लाभदायक बनाते हैं। अब तक अनेकों प्रकार के विटामिन प्रकाश में आ चुके हैं। वैज्ञानिक शोधों और प्रयोगों के आधार पर इनमें से विटामिन सी को मनुष्य के लिए न केवल महत्वपूर्ण बल्कि अति आवश्यक भी पाया गया है। विटामिन ''सी'' के खोजकर्ता हंगरी के वैज्ञानिक डा. अल्बर्ट सेजेन्ट ग्योरग्येई को आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में सन् 1937 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

विटामिन ''सी'' जल में घुलनशील एक सफेद रवेदार पदार्थ है जो 192° सेंटीग्रेड पर पिघलता है। यह एक शक्तिशाली अपचायक है। यह पात्रे (In vitro) इलैक्ट्रान ट्रांसफर अभिक्रियाओं में भाग लेता है। अनेक आक्सीकरण - अवकरण क्रियाओं में इस विटामिन की भूमिका रहती है। इस विटामिन को हम इसके रासायनिक नाम एस्कार्बिक अम्ल के नाम से भी जानते हैं। इस विटामिन से यद्यपि हमें ऊर्जा की कैलोरी नहीं प्राप्त होती है तथापि यह शरीर के विकास में लाभदायक है।

विटामिन ''सी'' की उत्पत्ति एवं इसके उपयोग की कथा ''आवश्यकता आविष्कार की जननी है'' कहावत को चरितार्थ करती है। प्राचीन समय में समुद्र में नौकाओं और जहाजों द्वारा यात्रा करने वालों को महीनों ताजे फल और सब्जियां न मिल पाने के कारण एक अजीब सी बीमारी हो जाती थी जिसमें मसूड़ों से रक्तस्राव, मसूड़ों और दांतों के संगठन की शिथिलता हड्डियों में गाँठे, जोड़ों की दुर्बलता तथा शरीर की प्रतिरोधी क्षमता में ह्रास आदि प्रमुख थीं। इनके कारण अंततोगत्वा मृत्यु भी हो जाती थी। वैज्ञानिकों ने इस बीमारी को स्कर्वी का नाम दिया, जिसका प्रमुख कारण विटामिन सी की कमी होना है।

सन् 1841 में बड नामक वैज्ञानिक ने प्रमाणित किया कि नींबू, संतरा, तथा नारंगी जैसे फलों के रस में स्कर्वी प्रतिरोधी तत्व विद्यमान हैं। वस्तुत : इन फलों के रसों में ही विटामिन सी निहित होता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य फलों व सब्जियों में भी विटामिन सी की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है जैसे आंवला (60%), काजूफल (20%), अमरुद (16%), धनिया पत्ती (13.5%), पत्तागोभी (12.4%), चुकन्दर, गाठगोभी, एवं हरीराई (सभी में लगभग 8%), पका पपीता एवं फूलगोभी

(5.7%) अनन्नास(3.9%), संतरा(3%), तथा नींबू (2.6%)।

सामान्यत: एक वयस्क को प्रतिदिन 70 मि. ग्रा. विटामिन सी की आवश्यकता होती है। गर्भवती महिलाओं को प्रतिदिन 100 मि. ग्रा. और शिशु को स्तनपान कराने वाली मां के लिए 150 मि. ग्रा. विटामिन सी की आवश्यकता होती है। शिशुओं की 30 मि. ग्रा. तथा 9 से 18 वर्ष तक के बच्चों व किशोरों के लिए 70 से 80 मि. ग्रा. विटामिन सी की आवश्यकता होती है। विटामिन सी का शरीर के विकास, रक्त वाहिकाओं के कार्य, रग पुठ्ठों की मरम्मत तथा स्वस्थ मसूड़ों के लिए विशेष महत्व है जबकि इसकी कमी से घावका देर से भरना, समय से पहले ही मोतियाबिन्द हो जाना मसूड़ो से खून बहना, हड्डियों का सरलता से टूटना, त्वचा का रुखापन, आंतों का विकार, दांतों में पायरिया आदि रोग हो जाते है।

विटामिन सी मुख्यत: निम्नलिखित रोगों से बचाव व इनके उपचार में सहायक होता है -

(अ) स्कर्वी

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस रोग में दाँतों व मसूड़ोंका संघटन शिथिल हो जाता है, मसूड़ों से बार बार रक्त बहता है, हड्डियों के सिरों पर गांठ उभर आने व हड्डियों के जोड़ों के पास की कूर्चाएं दुर्बल पड़ जाने से हृदय के स्नायु तंत्रों की कार्यक्षमता को हानि पहुँचती है। शरीर के भीतरी भाग में स्थित कोशवाहिनियां टूट जाती हैं, रक्त स्राव होता है, अस्थिमज्जा रक्त कण पैदा नहीं करती तथा अंत में दुर्बलता बढ़ने पर मृत्यु भी हो जाती है। विटामिन सी का उचित मात्रा में प्रयोग इससे हमारी रक्षा करता है।

(ब) सर्दी-जुकाम

प्राय: मौसम में परिवर्तन के साथ ही साथ यह रोग आरम्भ हो जाता हैं। यह एक विषाणु जनित रोग हैं। कुछ लोग अधिक संवेदनशील होते हैं और जल्द ही इस बीमारी की पकड़ में आ जाते हैं। अत्यधिक थकान, दुर्बलता तथा ठंड व आर्द्र मौसम में इसके विषाणु के प्रति शरीर की प्रतिरोधी क्षमता कम हो जाती है। इसमें विटामिन सी की मात्रा प्रतिदिन 10 ग्राम तक लेने से चमत्कारिक प्रभाव पड़ता है। इस रोग में अत्यधिक तेजी आने पर विटामिन सी के साथ एस्प्रीन व सल्फोनमाइड्स लेने पर लाभकारी प्रभाव होता है।

(स) एड्स

यह विश्व की सबसे ज्यादा घातक व जानलेवा बीमारी है, जिसकी गिरफ्त में आने पर मृत्यु निश्चित है क्योंकि इससे शरीर की प्रतिरोधी क्षमता बिल्कुल क्षीण हो जाती है व रोगी अनेक प्रकार के रोगाणुओं से अपनी रक्षा करने में असफल. हो जाता है। दो बार नोबेल पुरस्कार से सम्मानित हो चुके वैज्ञानिक डा. लीनस पालिंग के अनुसार शरीर में विटामिन सी की अधिक मात्रा एड्स से बचाव में सहायक होता है। यह विटामिन शरीर में प्रतिरोधक क्षमता का विकास करती है व शरीर को एड्स से सुरक्षा प्रदान करती है।

(द) नशे से छुटकारे में सहायक

नशा छोड़ देने पर उसके बाद होने वाली तकलीफों से आसानी से छुटकारा दिलाने के लिए विटामिन सी का प्रयोग अत्यधिक लाभदायक है। वैज्ञानिकों ने अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में मानव मस्तिष्क की सक्रिय कोशिकाओं एवं चूहों पर इसका परीक्षण किया जो कि सफल रहा। उन्होंने बताया कि जब नशा करने वाले व्याक्ति को मादक पदार्थ नहीं मिलता तो उसके मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार के रसायन की वृद्धि हो जाती है, जिससे उसे बेचैनी व तकलीफ होने लगती है। विटामिन सी का प्रयोग उपरोक्त दशा में व्यक्ति को राहत व शांति प्रदान करता है। इससे व्यक्ति को नशे से छुटकारा पाने में सहायता मिलती है।

अंतत: यह कहना ही उपयुक्त होगा कि विटामिनों के क्षेत्र में विटामिन सी का विशेष स्थान है। रोग प्रतिरोधी व स्वास्थ्य रक्षक इस विटामिन के संबंध मे सबसे महत्वपूर्ण व रोचक बात यह है कि यह हमारे दैनिक जीवन मे प्रयोग किये जाने वाले अनेक फलों व सब्जियों में ही निहित है। उसके अलावा यह गोलियों के रूप में भी उपलब्ध है। अत: थोड़ा ध्यान देने से हम अपने भोजन को विटामिन सी से युक्त कर और भी संतुलित बना सकते हैं तथा अनेक रोगों से अपना बचाव कर सकते हैं।

पौल्यूशन

भगवती प्रसाद उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

नदियों में कचरे से पौल्यूशन।
हिन्दी में अंग्रेजी पौल्यूशन
वातावरण में गैसों से है
अंतर में धार्मिक पौल्यूशन ॥

हिन्दी का सम्मान करें तो
मिट जाये अंग्रेजी पौल्यूशन।
जन जन का सम्मान करें तो
मिटे दिलों का पौल्यूशन

वृक्ष लगायें, फूल खिलायें
तो मिटे वायुमण्डल का पौल्यूशन।
आपस में मिल रहना सीखें
तो मिले सभी का सौल्यूशन।

पौधे - विटामिनों के स्त्रोत

ऊषा चौधरी एवं रेशमा माथुर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून।

गली मोहल्लों में घुमते हुए प्राय: ऐसे बच्चे दिखाई पड़ जाते हैं जिनके चेहरे पीले अथवा चेहरे पर सफेद दाग होते हैं या हाथ पाँव सूखे से होते हैं। सभी जानते हैं कि यह सब कुपोषण के परिणाम हैं। यह भी एक वास्तविकता है कि हमारे देश में भोजन की पौष्टिकता की अपेक्षा स्वाद पर अधिक ध्यान दिया जाता है जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। पौष्टिक तत्वों के अभाव से ही उक्त प्रकार की या कुछ अन्य प्रकार की विकृतियां आ जाती हैं। चिकित्सक से भी यदि परामर्श लिया जाये तो वे भी शरीर में विटामिन की कमी बता देंगे और उपचार स्वरूप या तो विटामिनों की गोलियां, टानिक आदि का सेवन करने की सलाह देंगे अथवा हरी सब्जियाँ, अण्डे आदि का प्रयोग करने को कहेंगे ताकि शरीर को आवश्यक विटामिन मिलें आखिर ये विटामिन क्या हैं ?

विटामिन एक कार्बन तत्व है जो कि मानव शरीर के सन्तुलन को बनाने के लिए शरीर की विपचन क्रिया को सामान्य रुप से चलाने में सहायता करते हैं। यह हमें प्रकृति से सहज ही भोजन से प्राप्त होते हैं। विटामिन मुख्यत: निम्न प्रकार के होते हैं।

विटामिन ''ए'' यह मानव शरीर की सूक्ष्म कोशिकाओं की विपचन क्रिया में सहायता करता है। इस विटामिन की कमी से प्राय: नीरोफ्थालमिया, केरालोमेलेसिया, निशान्धता एवं आंखों की अनेक बीमारियां हो जाती है। फाइनोडर्मा लेडस्किन आदि बीमारियां भी इस विटामिन की कमी से उत्पन्न होती हैं।

विटामिन ''ए'' मुख्यत: हमें दूध, मक्खन, पनीर, अण्डे कीं जर्दी और वसायुक्त मछली से प्राप्त होता है। मछली का तेल इसका सबसे उत्तम स्रोत है। विटामिन ''ए'' को ''रेटीनोल'' के साथ साथ ''केरोटिन'' के नाम से भी जाना जाता हैतथा पौधों के द्वारा भोजन से उपलब्ध होता है। सब्जी की पत्तिया पीले और लाल रंग के फलों मे यह व्यापक मात्रा में पाया जाता है। विटामिन ''ए'' हमें तभी प्राप्त हो सकता है जबकि खाना 100° सेल्सियस से ऊपर न पकाया जाये और न ही अधिक तला जाये । फलों और सब्जियों को धूप में रखने से भी विटामिन ''ए'' की मात्रा कम होती जाती है, इसलिए इन्हें धूप में भी नहीं रखना चाहिए।

विटामिन 'बी': यह एक जटिल समूह है। विशेषज्ञों द्वारा इसमें से बी$_1$, बी$_2$, बी$_3$ व बी$_{12}$ अलग किये

गये हैं। इसके अभाव में भूख न लगना, कब्ज, अजीर्ण आदि लक्षण प्रकट होतें है तथा पाण्डु रोग (पीलिया), हृदय की निर्बलता, नाड़ी की दुर्बलता, मुँह में छाले होना, जीभ का फटना, खुजली तथा नेत्र रोग, मुंहासे आदि रोग हो जाते हैं। ''बी$_3$'' की कमी से बालों के रंग व वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है। सिर में जलन होना, कयास तथा बालों का सफेद होना भी बी$_3$ की कमी के लक्षण हैं। ''बी'' की कमी से ''बेरी बेरी'' नामक रोग हो जाता है। इसके अलावा हड्डियों में दर्द, टाँगों में दर्द, हृदय-रोग हो जाते है।

विटामिन ''बी'' ईख, ढैक्ली कुटा चावल, चक्की का पिसा आटा, जौ का सत्तू, चना, मक्का, सोयाबीन, मूंगफली, सेम, मछली, अण्डे तथा भेड़ के मांस में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त संतरा, नारियल, आलू, गोभी, टमाटर, प्याज सें अल्प मात्रा में मिलता है। चावल की मॉड, चावल की भूसी तथा गेहूँ, चावल, मक्का, दाल, व दाल के छिलकों के अपरी भाग एवं चना आदि अन्नों में, टमाटर, मटर, बन्दगोभी, सलाद, गाजर, अखरोट, बादाम, पिस्ता, नारियल आदि मेवों में दूध, दही, अण्डे की जर्दी आदि में बहुतायत में पाया जाता है।

विटामिन 'सी' : रोग प्रतिरोधी क्षमता वाले इस विटामिन की कमी से स्कर्वी नामक रोग हो जाता है। विटामिन ''सी'' हमें हर प्रकार के नींबू, टमाटर, खरबूजा, अनानास, खीरा, सेव, मूंग, जौ, अंकुरित चना, प्याज, लहसुन, बंदगोभी, बथुआ, मटर की फली, दूध, दही हरे पत्ते, हरे साग, खट्टे फल, मूली, शलजम आदि में पाया जाता है। यह विटामिन सबसे अधिक आंवले में पाया जाता है। यह विटामिन मनुष्य के थूक व खून में भी पाया जाता है।

विटामिन ''सी'' लेने से निम्न फायदे होते है:-

1. गठिया के रोग का निदान होता है।
2. खून में पाये जाने वाले कोलेस्ट्रोल की मात्रा नियन्त्रित रहती है।
3. शरीर के समस्त तत्वों को जोड़ने में सहायता मिलती है।
4. शरीर के साथ-साथ हृदय की बाहरी सतह को भी जीवाणुओं से होने वाले रोगों से बचाता है।
5. मुख ऊतक को भी कई बिमारियों से बचाता है।

विटामिन 'डी': इस विटामिन के अभाव से बच्चों को ''रिकेट्स सूखे रोग तथा स्त्रियों में ओस्टयोगिलासिया'' नामक रोग हो जाता है। दांतों में कमजोरी एवं हड्डियों का पतला तथा टेढ़ा हो जाना आदि विकार भी प्रकट होते हैं। बच्चों को इस विटामिन की अधिक आवश्यकता होती है। फासफोरस तथा कैलसियम को पचाने के लिए भी इसकी जरुरत पड़ती है। विटामिन ''डी'' हमें घी, दूध, मक्खन, अण्डे की सफेदी व पनीर से प्राप्त होता है। गाजर में यह अल्प परिमाण में पाया जाता है। जिन पदार्थों

में विटामिन ए होता है यह उनमें भी पाया जाता है, परन्तु सूर्य के प्रकाश व मछली के तेल में अधिक मात्रा में पाया जाता है।

विटामिन 'ई' : इसे गर्भरक्षक विटामिन भी कहा जाता है। यह विटामिन संतानोत्पत्ति के लिए आवश्यक है। इसके कमी से पुरुष नपुंसक तथा स्त्रियां बाँझ हो जाती हैं। बार बार गर्भपात हो जाता है तथा कई बार गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो जाती है। यह विटामिन गेहूँ, सलाद, केला, नारियल, दूध, अंडा तथा मांस से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त चक्की के पिसे आटे व ढेकली के चावल में भी पाया जाता है।

विटामिन ''पी'' : यह विटामिन भी विटामिन सी जैसा होता है तथा नींबू के रस में पाया जाता है।

विटामिन 'एच' : इसके अभाव में चर्म प्रदाह, त्वचा का पीला पड़ जाना तथा जीभ के रोग हो जाते है। यह विटामिन अनाज, मटर, खमीर तथा जिगर में पाया जाता है।

विटामिन 'के' : यह विटामिन रक्त प्रवाह तथा सन्तुलन को ठीक बनाये रखता है। यह विटामिन रक्त को जमने में भी सहायता देता है। इस कारण रक्त- स्त्राव, क्षय-रोग आदि में प्रयोग किया जाता है। यह विटामिन अण्डे की जर्दी, घी, दूध, जिगर, बन्दगोभी, टमाटर, पालक तथा हरी पत्तियों में पाया जाता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि उपरोक्त विटामिनों में से अधिकतर हमें विभिन्न वनस्पतियों से एवं प्राकृतिक स्त्रोतों से प्राप्त होते है। अतः जनसाधारण को इन वनस्पतियों की सुरक्षा तथा संरक्षण को अपना दायित्व समझना चाहिये।

विरासत

राज कटारिया 'अज़ीज'
14/874, लोधी कालोनी, नई दिल्ली

अरे जल्लादो,
इन्सान के वेष मे ओ हैवानो।
क्यों मारते हो निरीह
पशु पक्षियों और जंगली जानवरों को
अपनी हवस के लिए?
काटते हो पेड़ों को, जलाते हो जंगलों को
अपने विकास के लिए ?

जब पर्यावरण न रहेगा, प्रकृति न रहेगी
कहां मिलेगा वो पक्षियों का कलरव
नदी-झरनों का मधुर संगीत और
मधुर स्निग्ध शीतल बयार।
रह जाएगा
जल्लादों का शहर,
भावना विहीन और
केवल मौत सा सन्नाटा।

जिस रफ्तार से है कट रहे पेड़,
जिस कदर है मारे जा रहे पशु पक्षी
निरन्तर विकास के नाम पर
सब तरफ बढ़ रहे है कंक्रीट के जंगल
सब तरफ रह रहे है पाषाण हृदय मनुष्य
वो संवेदनशीलता कहाँ गई ?
सब लुप्त हो गया, दुर्लभ हो गया
और रह गया अब
केवल मौत सा सन्नाटा।

है कुदरत का नियम सबसे बड़ा
जो आएगा वो जाएगा।
परन्तु इस आने और जाने के बीच
क्यों न कुछ ऐसा करे उपाय,
कि दे सके आने वाली सन्तानों को
विरासत में,
झरनों. की कुछ कलकल,
पक्षियों का कुछ कलरव,
कोयल की कुछ कूक,
कुछ शुद्ध व शीतल बयार
और एक उन्मुक्त वातावरण
इस निरन्तर प्रगति के साथ-साथ॥

उम्मीद का चिराग

राज कटारिया ''अज़ीज़''
लोदी कालोनी, नई दिल्ली

एक एहसास
मेरे अंदर जो था,
मरने से बच गया,
जी उठा
जी उठा, क्योंकि जब यह जाना
महसूस किया
कि दुनिया के लोगों में
जीने की भावना जागृत हो उठी है
वो ज्यादा पेड़-पौधे लगाने लगे हैं
प्रदूषण कम करने के उपाय रचाने लगे हैं
नदियों और नालों को साफ कराने लगे हैं
यह एहसास
उसी तरह है
जैसे कोई
अंधेरे को कोसने के बजाए
अंधेरे कमरे में चिराग जलाए
बैठा हो।

माननीय पर्यावरण और वन मंत्री श्री कमलनाथ जी का भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा परिदर्शन

माननीय पर्यावरण और वनमंत्री श्री कमलनाथ जी ने 15 जुलाई 1994 को भारतीय वनस्पति उद्यान के द्विशतवार्षिकी द्वार का सांकेतिक उद्घाटन किया तथा 4 प्रदर्शनी कक्षों का परिदर्शन किया। इस अवसर पर श्री कल्याण विश्वास, सचिव, पर्यावरण व वन विभाग, प. बं. सरकार भी उपस्थित थे। मंत्री महोदय ने उक्त द्वार के निकट **सराका असोका** (राक्सब.) डी. विल्ड. का पौधा लगाया। श्री बी. पी. सिंह, अपर सचिव प. एवं. वन मंत्रालय ने भी **एजेडिरेक्टा** इंडिका जुस. पेड़ के पौधे लगाए। उद्यान के पादप संसाधनों का परिदर्शन करते हुए विशाल पाम हाउस, जुड़वें फलोंवाला नारियल, विशाल रट्टन पाम, जापानी फन पाम, **विक्टोरिया एमेजोनिका** आदि का उन्होंने अवलोकन किया। विशाल वट वृक्ष के निकट कुछ देर ठहरने के बाद मंत्री महोदय केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय भवन आए। लगमग दो बजे समिति कक्ष में बैठक आरम्भ होने पर डा. पी. के. हाजरा, निदेशक ने भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की वर्तमान गतिविधियों एंव जैवीय विविधताओं, दुर्लभ और संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण में भारतीय वनस्पति उद्यान एंव प्रयोगिक उद्यानों की भूमिका पर प्रकाश डाला।

माननीय मंत्री श्री कमलनाथ जी ने इस संस्था को विश्व की एक अग्रणी संस्था कहा। उन्होंने भारतीय वनस्पति उद्यान के अनुरक्षण एवं प्रबंध तथा भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के शोध कार्यों पर संतोष व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि उद्यान हमारी अद्भुत विरासत है और कलकत्ता-हावड़ा की सघन आबादी के बीच अवस्थित रहने से जन चेतना को अनायास एक दिशा मिल जाती है। वनस्पति उद्यान को हावड़ा एवं कलकत्ता का हृदय कहा जा सकता है। पर्यावरण में पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिए पौधों का महत्व समझने में भारत हमेशा आगे रहा है। 'पर्यावरण एवं पृथ्वी' पर स्टॉकहोम सम्मेलन, 1972 में एकमात्र भारत की प्रधान मंत्री उपस्थित थीं। 20 वर्षों के बाद रियो डि जेनेरो के 'पृथ्वी सम्मेलन' में सौ से अधिक देशों के अध्यक्ष/शासनाध्यक्ष उपस्थित हुए। मंत्री महोदय ने देश के पादप संसाधनों के उचित उपयोग करने पर बल दिया जिससे इनका भण्डार अक्षय बना रहे। इस्पात, कंक्रीट आदि से देश के विकास पर संतुष्ट न होकर प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर भी उतना ही ध्यान दिया जाना चाहिए। जैव पदार्थों की आवश्यकता की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि जैव प्रौद्योगिकी तथा आनुंवाशिक इंजीनियरिंग की दिशा में व्यापक अनुसंधान एवं गवेषणा के माध्यम से उनका उपयोग करना होगा।

मंत्री महोदय ने जानकारी दी कि इस संस्था को पूर्ण विकसित करने के क्रम में कई वनस्पति उद्यान बनाए जाएँगे। उन्होंने (1) ए मैनुअल ऑफ कल्टिवेटेड पाम्स

इन इंडिया (एस. के. बसु एवं आर. के. चक्रवर्ती) (2) बाइसेंटेनरी ऑफ इंडियन बाँटनिक गार्डेन (यु समद्दार एंव बी राय) नामक दो पुस्तकों का विमोचन किया।

डा. आर. के. चक्रवर्ती, अपर निदेशक ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

इस शुभ समारोह के आयोजन में सर्व श्री/श्रीमती डी एम वर्मा, ए. आर. के. शास्त्री, एल. के. बनर्जी, डी. पी. मुखोपाध्याय, के सी मल्लिक, देविका मित्र, ए. पी. भट्टाचार्य, जी. एच. भौमिक, एम मन्ना, डी. एस पाण्डेय, उत्पल चटर्जी, बी राय, आँखिसाउ, पापिया रायचौधरी, गंगा सिंह, शोभारुद्र, झरना चक्रवर्ती, सविता पोद्दार, दीप्ति घोष, नीता सरकार, रीना विश्वास, स्वपन मुखर्जी, सोनामणि सरदार, लक्ष्मी सिंह आदि का विशेष सहयोग रहा।

समाचार

सितम्बर 1993 के दूसरे सप्ताह भा. व. स. के विभिन्न कार्यालयों में हिन्दी दिवस समारोह के अवसर पर विभिन्न कार्यक्रम हुए। इनमें हिन्दी निबन्ध, हिन्दी वाद-विवाद, हिन्दी काव्य पाठ प्रतियोगिता, हिन्दी में मुद्रित या चक्रमुद्रित सामग्री आदि के प्रदर्शन को प्रधानता दी गई।

मुख्यालय, भा व स प्रतियोगिताओं के लिए परिणाम की घोषणा निम्नलिखित रुप में हुई : -

निबन्ध प्रतियोगिता (अहिन्दीभाषी समूह)

1.	श्री आर. एन. चटर्जी	प्रथम
2.	श्री आर. के. नन्दी	द्वितीय
3.	श्री सुरजीत घोष	तृतीय

निबन्ध प्रतियोगिता (हिन्दीभाषी समूह)

1.	श्री मिरी राम	प्रथम
2.	श्री एस. आर काम्बले	द्वितीय

वाद-विवाद प्रतियोगिता

1.	श्री सुभाष नाग	प्रथम
2.	श्री आर. एन. चटर्जी	द्वितीय
3.	श्री विश्वनाथ साहा	तृतीय

कविता पाठ प्रतियोगिता

1.	श्री आर. एन चटर्जी	प्रथम
2.	श्री ए. के. चटर्जी	द्वितीय
3.	श्री विश्वनाथ साहा	तृतीय

टंकण प्रतियोगिता

1.	श्री अशोक बसु	प्रथम

दिनांक 14 सितम्बर 1993 को सिक्किम हिमालय परिमंडल, गंगतोक में हिन्दी दिवस समारोह की अध्यक्षता क्षेत्रीय आयुर्वेद अनुसंधान केन्द्र के डा. दीप नारायण सिंह ने की। श्री वी. पी. सैमवाल समारोह के मुख्य अतिथि थे।

दि0 6.10.93 को आइ एस आइ एम, कलकत्ता दिनांक 14 अक्तूबर 1993 को भारतीय वनस्पति उद्यान, 11 नवम्बर 93 को सी. बी. एल, हावड़ा में हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया।

अरुणाचल प्रदेश परिमंडल कार्यालय ने इटानगर नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा 14-21 सितम्बर 1993 को आयोजित हिन्दी सप्ताह में भाग लिया।

भा.व.स.के अन्य कार्यालयों में. भी हिन्दी दिवस समारोह उल्लासपूर्वक मनाया गया एवं राजभाषा विभाग के आदेशों के पालन करने का संकल्प लिया।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के कुछ महत्वपूर्ण नये प्रकाशन

पत्रिका

(दी बुलेटिन ऑफ दी बाटनिकाल सर्वे ऑफ इण्डिया वेजिटेशन, टैक्सोनामी, इकोलोजी, साइटोलोजी व आर्थिक वनस्पति के अध्ययन सम्बन्धी पादप विज्ञान की तिमाही पत्रिका)

खण्ड XXV (1983) सिल्वर जुबली वाल्युम : रु0 250/- $ 80.00 या £ 40.00

द्विशतवार्षिकी खण्ड

खण्ड XVII (1986) : रु 500/- या $ 160.00 या £ 80.00

खण्ड XXIX (1987) : रु 828/- या $ 260.00 या £ 132.00

खण्ड XXXII (1990) : रु 208.00 $ 68.00

फ्लोरा ऑफ इण्डिया सीरिज

फेसिकल 19 (एलेंजिएसी बर्मेनिएसी, कोक्लोस्पर्मेसी, कोनेंसी, लार्डिजेवेलेसी, लोबेलिएसी, मैल्वेसी व निसेसी (पेज 1.251), 1988, रु 280/- या $ 60.00 या £ 40.00

फेसीकल 20 (बार्क्लेयेसी, कबोम्बेसी, नेलुबोनेसी, निम्फिएसी, सेबिएसी, स्टैकिरेसी, सिम्लीकेसी, टेट्रेसेंट्रेसी, जाइगोफिलेसी) (पेज 1-944 + 13) 1900 रु 84/- या $ 28.00 या £ 20.00

स्टेट फ्लोरा एनेलसिस : सीरिज 5B2

फ्लोरा ऑफ तमिलनाडु, एडिटेड बाय ए एन हेनरी वी0 चित्रा एण्ड एन पी बालकृष्णन वाल्युम 3 (पेज 1-171) 1989 : रु 84/- 2600 या £ 12.00 (खण्ड 1 व 2 भी उपलब्ध हैं।)

फ्लोरा ऑफ राजस्थान, एडिटेड बाय बी बी शेट्टी व बी सिंह खंड 1 (1-451), 16 रंगीन व 20 श्वेत-श्याम फोटो 1987 रु 400/- या $ 80.00 £ 60.00

वाल्युम 2 (पेज 453-860) 1991 : रु 144/- $ 42.00 या £ 20.00

फ्लोरा ऑफ मध्यप्रदेश (मुद्रणाधीन)

खंड 3, रु 168.00 $ 52.00

फ्लोरा ऑफ सौराष्ट्र - पी बी बोले एण्ड जे एम पाठक

पार्ट II (पेज 1-302 + 4) 1988 : रु 104.00 $ 3200 £ 1400

पार्ट II (पेज 303-553) 1988 : रु 80/- $ 24.00 या £ 12.00

फ्लोरा ऑफ केरल-ग्रासेज : पी वी श्री कुमार एवं वी जे नायर (पेज 1.470, 96 इलेस्ट्रेशन्स) 1991 रु 268/- या $ 56.00 या £ 30.00

डिस्ट्रिक्ट फ्लोराज : सीरिज 5B3

फ्लोरा ऑफ नल्लमलै - जे एल इलिस, वाल्युम। (पेज 1.220, 9 फोटो + 1 मैप) 1987 : रु 72/ - या $ 24.00 या £12.00

वाल्युम 2 (पेज 221-490) 1990 : रु 76/- या $ 24.00 या $ 24.00 या £ 12.00

फ्लोरा ऑफ पालघाट डिस्ट्रिक्ट (इनक्लुडिंग साइलैण्ट वैली नेशनल पार्क, केरल) इवज़बेलु (पेज 1-646+15 श्वेत-श्याम फोटो) 1990 रु 276/- या $ 56.00 या £ 36.00

फ्लोरा ऑफ नासिक डिस्ट्रिक्ट - पी लक्ष्मी नरसिंहन एण्ड बी० डी० शर्मा (पेज 1-644 + 8 श्वेत श्याम फोटो + 6 रंगीन फोटो) 1991 रु 320/- या $ 64.00 या £ 36.00

फ्लोरा ऑफ महाबालेश्वर डिस्ट्रिकट, खंड I देशपांडे, शंर्मा एंड नायर : रु 228/- $ 48.00 खंड II मुद्रणाधीन

फ्लोरा ऑफ रायगढ़ डिस्ट्रिक्ट (1-581) रु 372.00 $ 80.00

फ्लोरा ऑफ यवनमल डिस्ट्रिक्ट (1-344) रु. 264.00 $ 56.00

विशेष व विविध प्रकाशन : सीरिज 4

आइकोन्स राक्सबर्गिएनी

फेसिकल II * (पेज 1-51) 1968 एण्ड III * (पेज 1-49) 1969 रु 16 या $ 4.00 या £ 2.00 प्रति फेसिकल, फेसिकल IV * (पेज 1-57) 1970 V * (पेज 1-52) 1971 एण्ड VI (पेज 1-51) 1973 : रु 20.00 या $ 6.00 या £ 3.00 प्रति फेसिकल,

फेसिकल VII (1-51) 1976 एण्ड VIII (पेज 1-53) 1978 रु 32/- या $ 8.00 या £ 4.00 प्रति फेसिकल

फाइकोलोजिया इण्डिका - के एस श्रीनिवासन, वाल्युम I * (पेज 1-52) 1969 : रु 31/- या $ 7.00 या £ 3.00

वाल्युम II (पेज 1-60) 1973 : रु 56/- या $ 13.00 या £ 6.00

भारत की वनस्पति * - हिन्दी प्रकाशन (पेज 1-179) 1984 : रु 35.00

टाइप कलेक्सन्स इन दी सेन्ट्रल नेशनल हर्बेरियम - यू पी समाद्दार : वॉल्युम II (पेज 1-128) 1991: रु 64/- या $ 22.00 या £ 16.00

इकोनामिक प्लांट्स ऑफ इण्डिया - एम पी नायर एट आल, वाल्युम I (पेज 1-159) 1989 : रु 74/- या $ 24.00 या £ 12.00 खंड II मुद्रणाधीन

नेटवर्क ऑफ बाटनिक गार्डेन्स- सम्पादित एम पी नायर (पेज 1-159) 1987 : रु 460/- या $ 80.00 या £12

रेड डाटा बुक ऑफ इण्डियन प्लाण्ट्स - एडिटेड बाय एम पी नायर एण्ड ए आर के शास्त्री वाल्युम I (पेज 1-383, 8 फोटो) 1987 : रु 160/- या $ 48 या £ 22.00

वाल्युम II (पेज 1-123, 6 फोटो) 1988 : रु 132/- या $40.00 या £ 18.00

वाल्युम III (पेज 1-278, 4 फोटो) 1989 : रु 188/- या $ 56 या £ 24

फ्लोरा इण्डिके इन्यूरेशियो : मोनोकोटिलिडोनी - एस कार्तिकेयन, एस के जैन, एम पी नायर एण्ड एम संजप्पा (पेज 1-435 + 3) 1989 रु 160/- या $ 48.00 या £ 22.00,

ए डाइरेक्टरी ऑफ बाटनिक गार्डेन्स एण्ड पार्क्स इन इण्डिया - आर के चक्रवर्ती एण्ड डी पी मुखोपाध्याय (पेज 1-192.8 फोटो) 1990 : रु 132/- या $40.00 या £ 18.00

फ्लोरा ऑफ तरोबा नेशनल पार्क : एस के मलहोत्रा एंड एस० मूर्ति रु 88.00 या $ 24.00

सी ग्रासेज ऑफ कोरोमंडल कोस्ट : राममूर्ति एंड बालकृष्णन : रु 140.00 $ 44.00 £ 24.00

व्लैरवर्ट्स ऑफ इण्डिया : एम के जनार्दन एंड ए एन हेनरी : रु 72.00 $ 24.00 £ 12.00

मैनग्रोव्स इन इण्डिया - आइडेंटिफिकेशन मैनुअल, एल के बनर्जी, ए आर के शास्त्री, एम पी नायर (पेज 1-113, 30 फोटो) 1989 : 168/- या $ 52.00 £ 24.00

ए मैनुअल फॉर हर्बेरियम कलेकसन्स - आर आर राव व बी डी शर्मा (पेज 1-20 + 1)1990: रु 8/-

पश्चिमी हिमालय की वनस्पतियाँ (सं. डी के सिंह, बी पी उनियाल)(पेज-139) रु 124.00 $ 36.00

उपरोक्त प्रकाशन निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पी-8, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता- 700001. भारत से खरीद की जा सकती हैं। प्रकाशन वी पीपी से नहीं भेजा जाता है। उचित मूल्य धनादेश द्वारा प्राप्त, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण को अग्रिम भेजते हुए अपना नाम व पता स्पष्ट लिखें। ड्राफ्ट ''एकाउण्ट्स ऑफिसर, पी ए ओ (बी एस आइ एण्ड जेड एस आई) कलकत्ता'' के पक्ष में प्रकाशन अधिकारी को उपरोक्त पते पर प्रेषित करें।

टेरोकार्पस डलबर्जिआइडिस

कैनवेलिया केथेर्टिका

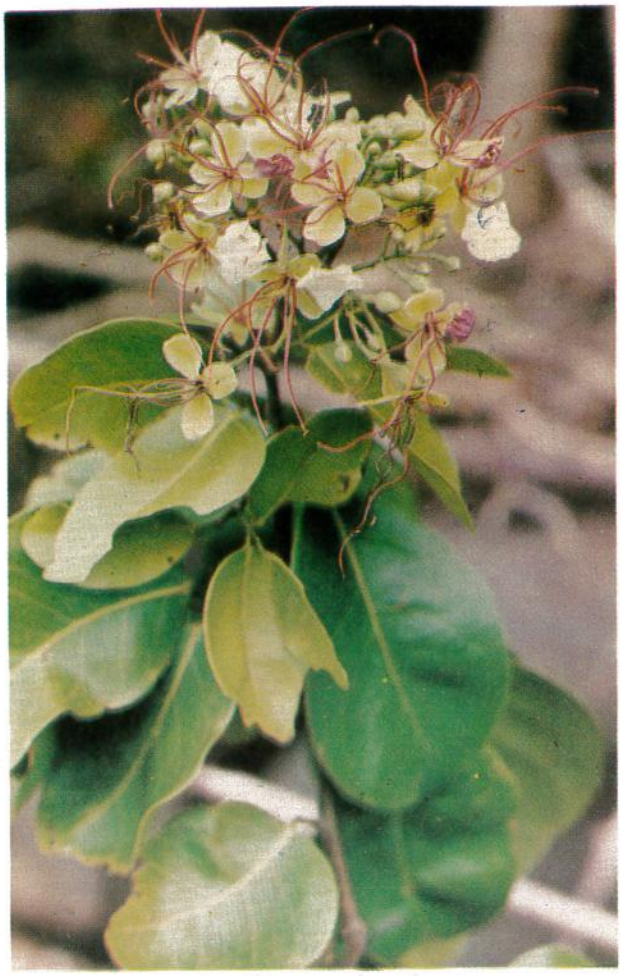

इंट्सिया बाइजुगा

इरिथ्रिना क्रिस्टा — गैली कल्टिवेटेड

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पी-8, ब्रेबोर्न रोड, कलकात्ता-700 001 द्वारा प्रकाशित एवं लेसर कम्पयुटर, **स्क्रिपट्रन**, ए॰ सी॰ - 200, सल्टलेक, कलकत्ता-700 064, फोन - 372437 द्वारा मुद्रित।